१ समग्रता है द्वार

मेरे प्रिय आत्मन,

सुबह की चर्चा के संबंध में बहुत से प्रश्न मित्रों ने पूछे हैं। एक मित्र ने पूछा है कि क्या ईश्वर है, जिसकी हम खोज करें? और भी दो तीन मित्र ने ईश्वर के संबंध में ऐसे ही प्रश्न पूछे हैं कि क्या आप ईश्वर को मानते हैं, क्या अपने ईश्वर का दर्शन किया है? कुछ मित्रों ने संदेह किया है कि ईश्वर तो नहीं है, उसको खोजें ही क्यों?

इसे थोड़ा समझ लेना उपयोगी होगा। मैं जब परमात्मा का, प्रभु का, या ईश्वर शब्द का प्रयोग करता हूं तो मेरा प्रयोजन है, उससे जो है। दैट, व्हिच इज। जो है। जीवन है। अस्तित्व है। हम नहीं थे तब भी अस्तित्व था। हम नहीं होंगे, तब भी अस्तित्व होगा। हमारे भीतर भी अस्तित्व है। जीवन है। जीवन की यह समग्रता, यह टोटलिटी ही परमात्मा है। इस जीवन का हमें कुछ भी पता नहीं, किया क्या है? स्वयं के भीतर भी जो जीवन है उसका भी हमें कोई पता नहीं कि वह क्या है?

एक फकीर था बायजीद—कोई उसके द्वार पर दस्तक दे रहा है। और कह रहा है, द्वार खोलो। बायजीद भीतर से पूछता है, किसको बुलाते हो, किसको खोजते हो? कौन द्वार खोले? अगर आपके घर किसी ने दस्तक दी होती तो आप पूछते कौन है? कौन बुलाता है? बायजीद ने कहा, कौन के लिए बुलाते हो? किसे बुलाते हो, कौन दरवाजा खोले? किसको पुकारते हो? बायजीद ने यह नहीं पूछा कि कौन पुकारता है, बायजीद ने कहा, किसको पुकारते हो? उस आदमी ने कहा, किसको पुकारूंगा? बायजीद को पुकारता हूं, बायजीद—दरवाजा खोलो! बायजीद ने कहा, फिर क्षमा करो। वर्षों से मैं खोज रहा हूं कि यह बायजीद कौन है? अभी तक मैं खोज नहीं पाया हूं। मुझे खुद ही पता नहीं कि बायजीद कौन है? मैं कौन हूं, यह मुझे खुद ही पता नहीं है।

मजाक में ही यह बायजीद ने कहा होगा। द्वार तो खोल दिए थे। लेकिन ठीक ही बात कही थी। यह हमें पता नहीं कि मैं कौन हूं? जीवन क्या है? यह हमें पता नहीं। अस्तित्व क्या है, यह हमें पता नहीं। और जब तक अस्तित्व का पता न हो, जीवन का पता न हो, तब तक हम जीते हैं नाम मात्र को। वस्तुतः मरते हैं धीरे-धीरे। जीते नहीं है और मरने की इस लंबी प्रक्रिया को ही जीवन समझ लेते हैं।

जब मैं कहता हूं प्रभु का द्वार, तो जानना कि मैं कह रहा हूं जीवन का द्वार। जीवन की समग्रता का नाम ही परमात्मा है। परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है कहीं बैठा हुआ, कि आप जाएंगे और इंटरव्यू ले लेंगे, भेंट हो जाएगी। परमात्मा कहीं कोई व्यक्ति नहीं है जो बैठा हुआ है। आपकी प्रतीक्षा कर रहा है दरवाजे के भीतर, आप दरवाजा खोलेंगे और वह मिल जाएगा। परमात्मा का अर्थ है, यह जो जीवन का अनंत विस्तार है, यह जीवन का समस्त सारभूत है—इस सबको ही हम परमात्मा कह रहे हैं। जीवन के द्वार को खोल लेना ही परमात्मा के द्वार को खोल लेना है

। और हमें अपने भीतर भी जो जीवन है इसका कोई पता नहीं है। अपने से ही अ परिचित हम जीते हैं। अनजान, अपने से ही। इससे ज्यादा दुखद और अंधकारपूर्ण कुछ भी नहीं हो सकता है। और जिस आदमी को यह भी पता न हो कि मैं कौन हूं? उसे और क्या पता हो सकता है? उसका सारा ज्ञान इस मूल अज्ञान पर खड़ा होता है, इसलिए खतरनाक हो जाता है।

आज आदमी के पास बहुत दिन है। ज्ञान की कमी नहीं है

सिर्फ एक ज्ञान छोड़कर, कि वह स्वयं कौन है? यह सारा ज्ञान, अज्ञान की भित्ति पर खड़ा है। यह खतरनाक है। सारी मनुष्य की सभ्यता, सारी संस्कृति, सारा समा ज खतरे में है। किसी भी क्षण नष्ट हो जाए, क्योंकि अज्ञान के ऊपर ज्ञान की दी वार खड़ी कर दी है। यह अज्ञान के ऊपर ज्ञान का खड़ा हुआ भवन आदमी को ले कर ही नष्ट होगा। अगर हम मौलिक अज्ञान को नहीं तोड़ते हैं। धर्म मनुष्य के भी तर वह जो मूलभूत अज्ञान है। उसको तोड़ने की कला है। और परमात्मा कोई व्य क्ति का नाम नहीं है। परमात्मा जीवन की समस्तता का नाम है। उस समस्त के मंदिर में हम कैसे प्रविष्ट हो जाए—मैं जब परमात्मा की बात कहता हूं तो मेरा अ र्थ किसी दुनिया को बनाने वाले व्यक्ति से नहीं है। दुनिया किसी ने कभी नहीं बना यी है। कोई बनाने वाला नहीं है। परमात्मा और सृष्टि ऐसी दो चीजें नहीं हैं। स्रष्ट ा और सृष्टि ऐसी दो चीजें नहीं हैं।

एक गाय गीत गाता है। एक चित्रकार चित्र बनाता है। चित्र अलग है, बनाने वाल ा अलग है। चित्र बनकर अलग हो जाता है। चित्रकार अलग हो जाता है। परमात मा कोई ऐसी चीज नहीं है कि जगत और जीवन से अलग हो गयी है। परमात्मा ऐसे है, उदाहरण के लिए समझाऊं—जैसे कोई नृत्यकार नाचता है। नाचना और नृ त्यकार एक ही हैं—दो नहीं हैं। नाचने वाला बंद, नृत्य भी बंद। ऐसा नृत्य अलग खड़ा नहीं रह जाएगा नाचने वाले से। तो परमात्मा और उसका जगत ऐसी दो ची जें नहीं हज, स्रष्टा और सृष्टि दो चीजें नहीं हैं। क्रिएटर और क्रिएशन दो चीजें नह ीं हैं। क्रिएटर ही क्रिएटिव है। क्रिएशन ही क्रिएट पर है। क्रिएटिविटी वह सृजनात्म कता है, वही परमात्मा है। और इसलिए परमात्मा को खोजने कहीं और नहीं जान ा है। यही हैं—अभी—और यही है। मुझ में है। आप में हैं। सब में हैं, सब तरफ है। जो भी है वही है। और तक एक दूसरी दृष्टि होगी। परमात्मा को एक कोने में र खने के कारण हमारी सारी दृष्टि जगत ने परमात्मा से शून्य कर ली है। और कह ीं एक मंदिर की एक मूर्ति में, कहीं आकाश में उसे बिठा रखा है।

एक मित्र ने पूछा है कि जब परमात्मा सब जगह है तो वह मूर्ति में क्यों नहीं होग ा। बिलकुल होगा। लेकिन जिसका आग्रह है कि मूर्ति में ही है—उसके लिए सब ज गह नहीं हो सकेगा। और जिसके लिए सब जगह नहीं है, उसके लिए मूर्ति में भी नहीं हो सकता है। परमात्मा सब जगह है। निश्चित ही मूर्ति में भी आ गया। लेकि न जो कहता है मूर्ति में ही है, उसके लिए सब जगह नहीं है। जिसके लिए सब जगह नहीं है उसके लिए मूर्ति में भी नहीं हो सकता है। और जो कहता है सब ज

गह है, वह मूर्ति को खोजने न जाएगा। जो मिल जाएगा वही परमात्मा है। वह मंदिर को खोजने नहीं जाएगा, क्योंकि सब उसका ही मंदिर है। फिर वह यह नहीं कहेगा कि यह मेरी मूर्ति है, मैं इसकी पूजा करूंगा। पूजा किसकी करनी है फिर? जब सभी वही है। श्वास-श्वास वही है। कण-कण वही है, तो पूजा किसकी? मैं भी वही हूं, पूजा करे कौन? किसकी करे? यह जिसको पता पड़ जाएगा कि वह सब में है, वह मूर्ति की बातों में नहीं पड़ने वाला है, लेकिन आदमी अपनी नासमझियों के लिए भी दलील खोजते हैं। सच तो यह है कि आदमी सिर्फ नासमझियों के लिए ही दलील खोजते चले जाते हैं। और अपनी नासमझियों को मजबूत करते चले जाते हैं। एक आदमी को मूर्ति पूजनी है तो कहता है कि जब सब में है तो फिर मूर्ति में भी है। लेकिन सब में कभी देखा है? और अगर मूर्ति को कोई आदमी तोड़ रहा हो तो उसमें भी दिखेगा, जो तोड़ रहा है? और मूर्ति को कोई लात मार रहा हो तो उसमें भी दिखेगा, जो लात मार रहा है। उसमें नहीं दिखेगा फिर, वह लात मारने वाले की गर्दन पकड़ लेगा; यह मूर्ति का पूजक। उसके दिखना मुश्किल हो जाएगा। वह कह रहा है कि सब में हैं। सब में कहा है, लेकिन हिंदू को मुसलमान ने देखता हैं, मुसलमान को हिंदू में दिखता है। कहा हैं सब में हैं। लेकिन सब में दिखता कहां है? ये सब दलीलें खतरनाक हो जाती है। अपना मतलब सिद्ध करने लगती है। जब सब में है फिर मूर्ति में भी है। फिर मूर्ति की पूजा के लिए किसलिए जा रहे हो सुबह-सुबह? कहा चले जा रहे हो, सब को छोड़कर वहां कहां जा रहे हो? जब एवरीव्हेयर है, तो समव्हेयर की दृष्टि छोड़ देनी पड़ेगी। जब कोई कहता है कि सब जगह है तो कहीं होने का खयाल छोड़ देना पड़ेगा। जब सब जगह है तो फिर कही होने का कोई सवाल नहीं रहा। कोई प्रश्न न रहा, कोई प्रयोजन न रहा, लेकिन हम क्या करते हैं? हम बड़ी-बड़ी बातों के आधार पर बड़ी-छोटी बातें सिद्ध करते है और उन छोटी-छोटी बातों को पकड़कर बड़ी-बड़ी बातों की हत्या करते है।

मैं नहीं कहता हूं कि मूर्ति में नहीं है। अगर मैं कहता हूं कि मूर्ति में नहीं है तो मेरा मतलब सिर्फ इतना ही है कि जिसे मूर्ति में ही दिखता है वह गलत देख रहा है। सब जगह दिखे, फिर तो मूर्ति में भी।

मैंने सुना है कि एक फकीर एक रात एक मंदिर में ठहरा। रात सर्द है, अंधेरी रात है। वह सर्दी से कंप रहा है, वह भीतर गया है। पुजारी सो रहा है। भगवान बुद्ध की मूर्तियां रखी हुई है तीन। लकड़ी की मूर्तियां हैं। एक मूर्ति उठा लाया और आग जलाकर हाथ सेंकने लगा। मूर्ति को तापने लगा। आग जली देख कर मंदिर का पुजारी भागा आया, देखा तो भगवान की मूर्ति जल रही है और फकीर आग ताप रहा है। उस पुजारी ने कहा, पागल हो, यह क्या कर रहे हो? यह क्या अनर्थ कर डाला? भगवान की मूर्ति जला रहे हो? फकीर ने चुपचाप सुना—उसने कहा, भगवान की मूर्ति! बड़ा अच्छा बताया। एक पास में पड़ी हुई लकड़ी को उठाकर उसे रख को कुरेदा जो जल गयी थी। उस पुजारी ने पूछा—क्या खोजते हो? उस

ने कहा, भगवान की अस्थियां खोजता हूं। उस पुजारी ने कहा, तब निपट पागल ह ो। लकड़ी की मूर्ति में कहां अस्थियां हैं। तो वह फकीर हंसने लगा। उसने कहा, रा त बहुत लंबी और सर्दी बहुत ज्यादा है। दो मूर्तियां और भीतर रखी हैं, तुम उठा लाओ, उनको भी जला लें और ताप लें। मंदिर के पुजारी ने और पुजारियों को जगा लिया और उस फकीर को धक्के देकर बाहर निकाल दिया। वह फकीर हंसत ा हुआ बाहर निकल गया। और पुजारी शायद ही समझ पाए होंगे उसकी हंसी। सुबह बहुत हैरान हुए। सुबह जब सूरज निकला है, वह फकीर सड़क के किनारे बै ठा है हाथ जोड़े। राह से जो भी निकल रहा है सब के हाथ जोड़े बैठा है। राह में एक पत्थर पड़ा है, उसके लिए भी हाथ जोड़े बैठा है, ऊपर सूरज निकल रहा है, उसके लिए भी हाथ जोड़े बैठा है। उन पुजारियों ने जाकर कहा कि पागल, अब क्या कर रहा है? उसने कहा पूजा कर रहा हूं। किसकी पूजा कर रहा है? उसने कहा, भगवान की पूजा कर रहा हूं। भगवान कहां है? उसने कहा—यह सब—जो च ारों तरफ फैला है, और क्या है? वे कहने लगे, रात मूर्ति जला दी नासमझ—और अब जहां कुछ भी नहीं है, वहां पूजा कर रहा है। उसने कहा, मूर्ति जलायी थी ताकि तुम्हारा भ्रम जल जाए। मूर्ति से मुझे क्या लेना-देना है! मूर्ति जलायी थी, त ाकि तुम्हें खयाल आ जाए कि कहीं तुम लकड़ी को ही तो नहीं पूज रहे हो। तुम्हें भगवान दिखा है, अगर लकड़ी मग दिख जाता तो सब जगह दिख जाता, लेकिन कहीं नहीं दिखा। लकड़ी में सिर्फ मानकर बैठे हो। और जब मैं अस्थियां खोने लगा , तब तुम हंसने लगे, कि पागल है।

यह जो मूर्ति को पूज रहे हैं, इन्हें कोई भगवान दिखता हो, ऐसा मत समझ लेना। और मैं जो मूर्ति के खिलाफ बोल रहा हूं तो ऐसा मत समझ लेना कि भगवान के विरोध में बोल रहा हूं। भगवान के प्रेम में बोल रहा हूं। और अगर भगवान को लाना है तो भगवान के नाम पर चलने वाली नासमझियों को अत्यंत शीघ्रता से बंद कर देना जरूरी है। कई बार ऐसा होता है कि शत्रु मित्र मालूम पड़ते हैं। मित्र शत्रु मालूम पड़ते हैं। आज जो भगवान की मूर्तियों के पास खड़े हैं वे भगवान के मित्र मालूम पड़ते हैं। और सचाई यह है कि उनसे ज्यादा भगवान की शत्रुता को ई भी नहीं कर रहा है। क्योंकि भगवान के नाम पर जिस ढोंग को, जिस पाखंड को खड़ा किया जा रहा है, जिस धंधे को, जिस व्यवसाय को, चलाया जा रहा है वह न मालूम कितने लोगों को भगवान से विमुख बनने का कारण बन रहा है। मंि दरों की तरफ आंख उठाकर, तीर्थों की तरफ आंख उठाकर कोई बुद्धिमान आदमी भगवान की दिशा में जाने की हिम्मत नहीं कर सकता है। वह कहेगा, अगर यही सब भगवान के नाम पर हो रहा है तो क्षमा चाहता हूं। भगवान के नाम पर जो होता रहा है आज तब—सब तरह के शोषण का समर्थन हो रहा है भगवान के न ाम पर। सब तरह गरीबी बचायी जा रही है भगवान के नाम पर। सब तरह की बेईमानी को सुरक्षा दी जा रही है भगवान के नाम पर! सब तरह की— धन-संपि त्त के सारे के सारे उपद्रव की रक्षा की जा रही भगवान के नाम पर। जिस आदम

ी को भी यह सब जाल दिखाई पड़ेगी वह चौंककर कहेगा, यह भगवान का नाम और भगवान की बात चीत सब अफीम है। इस सब से छुटकारा चाहिए। लेकिन यह आदमी भी गलती कर रहा है, वह जल्दी कर रहा है। वह धर्म के दुश्मनों को धर्म का मित्र समझ रहा है और धर्म के मित्र समझकर धर्म का दुश्मन हुआ जा रहा है।

मेरी स्थिति बहुत अजीब हो गयी है। धर्म से मुझे प्रेम है और धर्म के नाक पर चलते पाखंड के नाम से घृणा है। और तब ऐसा लगता है कि शायद मैं धर्म के विरोध में बोल रहा हूं। तब ऐसा लगता है, शायद मैं अधार्मिक हूं। तब ऐसा लगता है, शायद मैं दुनिया से धर्म को मिटा देना चाहता हूं। मैं चाहता हूं कि दुनिया में धर्म आए, लेकिन धर्म के नाम पर जो दुनिया में व्यवसाय खड़ा है, वह धर्म नहीं आने दे रहा है। और उसका जाल इतना लंबा है और उसकी बातें इतनी पुरानी हैं, और उसकी परंपरा इतनी गहरी और जड़ों तक घुस गयी है, कि हम भूल ही गए हैं कि वह कहां-कहां हमारे खून में संयुक्त हो गया है। इस सबसे जागे बिना पृथ्वी धार्मिक नहीं हो सकती। आज तक पृथ्वी धार्मिक नहीं हो सकी। अगर पृथ्वी धार्मिक होती, तो यह सब होता—जो हो रहा है? अगर पृथ्वी धार्मिक हो तो समाजवाद की जरूरत है? साम्यवाद की जरूरत है?

दूसरे मित्र ने पूछा है तो मैं वह प्रश्न भी ले लूं। उन्होंने पूछा है—क्या कम्युनिस्ट है?

अगर दुनिया धार्मिक हो तो कम्युनिज्म की कोई भी जरूरत नहीं है। और जब तक दुनिया अधार्मिक है, कम्युनिज्म की जरूरत पड़ेगी। दुनिया अगर धार्मिक हो तो गरीबी कभी भी मिट जानी चाहिए, क्योंकि धार्मिक आदमी इतनी गरीबी, इस कुरूपता को बर्दाश्त नहीं कर सकते हैं। लेकिन संत-महात्मा बड़े मजे से बर्दाश्त कर रहे हैं। न केवल बर्दाश्त कर रहे है, बल्कि गरीबी को तर्क दे रहे हैं कि यह क्यों है? वह समझाते हैं कि, गरीबी इसलिए है कि पिछले जन्मों का पाप कर्म है तुम्हारा, इसलिए तुम गरीब हो। गरीबी को बचाने के लिए ये बफर्स उपयोग किए जा रहे हैं। ट्रेन में देखा है न। ट्रेन के दो डिब्बों के बीच में बफर लगे रहते हैं। शाक-एब्जार्वर लगे रहते हैं। कितना ही धक्का लगे गाड़ी को, डिब्बों के भीतर से यात्री को पता नहीं चलता। शाक-एब्जार्वर धक्का पी जाता है, कार के नीचे स्प्रिंग लगे हुए हैं, कितने ही रास्ते पर गड्ढे आ जाए भीतर के यात्री को कम से कम पता चलता है, स्प्रिंग ही सारा धक्का पी जाता हूं।

हिंदुस्तान में तथाकथित धार्मिकों ने ऐसे सिद्धांत ईजाद किए हैं जो शाक-एब्जार्वर का काम कर रहे हैं। जिंदगी कितनी ही कुरूप और गंदी हो जाए, शाक-एब्जार्वर सब पी जाता है। कर्म का सिद्धांत ऐसा ही शाक-एब्जार्वर है। वह कहता है, तुमने पिछले जन्म में पाप किए, इसलिए तुम गरीब हो। और सचाई यह है कि समाज अभी पाप कर रहा है, इसलिए अधिक लोग गरीब हैं। किसी के पिछले जन्म के पाप के कारण नहीं। समाज के सामूहिक पाप के कारण गरीब है। अगर धर्म सीध

ी और सच्ची बात कह सकता, और अगर संतों या महात्माओं ने जाने या अनजा ने न्यस्त स्वार्थों की रक्षा न की होती तो दुनिया में कम्युनिज्म की कभी भी कोई जरूरत न पड़ती। कम्युनिज्म की जरूरत पड़ रही है, क्योंकि पृथ्वी धार्मिक नहीं हो सकी और धर्म अधार्मिक ठेकेदारों के हाथ में है। आज भी वे ही लोग सारी जमी न पर धर्म को पकड़े हुए हैं। उसकी गर्दन को पकड़े हुए हैं। उसकी गर्दन को पकड़े हुए हैं। यह खयाल कि एक-एक आदमी अपने कर्मों का फल भोग रहा है, अत्यंत खतरनाक सिद्ध हुआ है। हम सब सामूहिक कर्मों का फल भोग रहे हैं।

मैंने एक कहानी सुनी है। एक फकीर एक मस्जिद के नीचे से गुजर रहा है। मुल्ल ा अजान देने को चढ़ा मस्जिद के टावर पर और गिर पड़ा। लंबी मीनार है। फकीर नीचे से जा रहा है। वह उसकी गर्दन पर गिरा। मुल्ला तो बच गया—गिरने वाला , फकीर की गर्दन टुट गयी। उसे अस्पताल में भर्ती किया गया। उसके शिष्य उस के पास गए। शिष्य जानते थे कि उनका वह तो गुरु है, वह जो फकीर है, वह ह र छोटी-मोटी चीज में बड़ी ही गहरी छान बीन करता है। तो वे गए और उन्होंने पूछा कि हम एक बात पूछने आए हैं। आपके इस गर्दन टूट जाने में भी कोई राज आपने खोजा? कोई मिस्ट्री? उसने कहा, बराबर खोजा। यह बात सिद्ध हो गयी। गिरे कोई—गर्दन किसी और की टूट सकती हैं। अब तक मैं यही सोचता था, जो गिरेगा उसकी गर्दन टूटेंगी। अब मैं मान गया, गिरे कोई और, गर्दन किसी और क ी टूट सकती है। हम नहीं गिरे तो भी गर्दन हमारी टूट गयी है। पाप कोई और क र रहा है, फल कोई और झेल रहा है। वह बात गलत हो चुकी कि तुमने पाप ि कए हैं और तुम फल भोग रहे हो। वह इंडीजुअलिटी का खयाल, व्यक्ति अहंकार का खयाल कि एक-एक व्यक्ति अलग जी रहा है—बुनियादी रूप से झूठ है। सारे व यक्तियों को जीवन अंतस्संबंध है, इटररिलेशनशिप है। हम सब इकट्ठे पाप भोगते हैं , इकट्ठे पुण्य भोगते हैं। लेकिन धर्म ने एक-एक व्यक्ति को हजारों दफें समझाया ि क अहंकार झूठ है। और फिर भी जाने-अनजाने अहंकार को ही बल दिया है! और कहा है कि तू अपने फल भोग रहा है, मैं अपने फल भोग रहा हूं! और अगर ह र आदमी अपन फल भोग रहा है तो ऐसी विचारधारा में समाज की धारणा का जन्म ही नहीं हो सकता है। समाज का कोई अर्थ ही नहीं है। व्यक्तियों की भीड़ है । समाज नहीं है। धर्म ने जमीन को व्यक्तियों की भीड़ बना दिया है—समाज नहीं। भीड़ तो तभी बनेगी समाज, जब हम अतर्संबंधित है। जब हम एक-दूसरे के साथ ही जी रहे हैं और भोग रहे हैं।

इस देश में इतना जो निपट स्वार्थ दिखायी पड़ता है, उसके पीछे धार्मिक लोगों की शिक्षाएं हैं। इतना जो निपट स्वार्थ और एक-एक आदमी अपनी-अपनी फिक्र में। ि कसी को किसी से कोई प्रयोजन नहीं—इसके पीछे बुर लोगो का हाथ नहीं तथाकथि त अच्छे लोगों का हाथ है। क्योंकि यह वह सिखा रहे हैं कि एक-एक व्यक्ति अपन ा-अपना मोक्ष खोजे—अपने-अपने पापों को काटे। अपने-अपने पुण्य इकट्ठे करे। समा ज जैसी कोई चीज नहीं है। हम जुड़े नहीं हैं। हम सब अलग-अलग अपनी-अपनी

यात्रा कर रहे हैं। इस धारणा ने हिंदुस्तान के सामाजिक जीवन को एक पागलखान ा, एक कुरूपता, एक अत्यंत ही गंदा गड्ढा बना दिया है। क्योंकि हर आदमी अपनी फिक्र कर रहा है।

जिस दिन जीसस को सूली लगी, जिस दिन जीसस को फांसी लगी, शायद आपको पता न हो, एक आदमी को उसी दिन दाढ़ में दर्द हो रहा था उसी गांव में। जी सस को सूली लग रही है। दुनिया के एक प्यारे से प्यारे आदमी को आज सूली पर लटकाया जाने वाला है। और एक आदमी को रात से दाढ़ में दर्द हो रहा है। दां त दुख रहा है। वह सुबह को उठता है। जो भी उसके पास आता है, लोग कहते हैं, सुना तुमने, वह मरियम के बेटे जीसस को सूली लगने वाली है। वह कहता है, हां सुना है। रात भर सो नहीं सका, दाढ़ में बड़ा दर्द हो रहा है। दाढ़ बड़ी दुखत ी है, फलां दवा लगायी थी, कुछ काम नहीं करती। वह आदमी कहते हैं, ठीक है। दाढ़ है, ठीक हो जाएगी। लेकिन वह मरियम के बेटे को सूली लग रही है। वह कहता है, होगा, लेकिन मेरी दाढ़ में बहुत दर्द हो रहा है। जो भी आता है वह उ ससे कहता है, मरियम के बेटे को सूली लग रही है। और वह कहता है, होगा, ठ ीक है, सुना है मैंने। लेकिन मेरी दाढ़ दुख रही है। आदमी हैरान है, वह कहता है कि ठीक है, दाढ़ है, ठीक हो जाएगी। वह कहता है, बड़ी तकलीफ है। रात भार करवटें बदलता रहा। सो नहीं सका। दाढ़ में बड़ी तकलीफ है। गांव में जीसस को सूली लग रही है—एक आदमी की दाढ़ में तकलीफ है! वह कहता है, नहीं दाढ़ के अतिरिक्त कुछ भी नहीं दिखाई पड़ रहा है।

हिंदुस्तान में हर आदमी की दाढ़ में तकलीफ है। पूरे हिंदुस्तान को सूली लग रही है। और हार आदमी अपनी दाढ़ की बात कर रहा है। हिंदुस्तान को एकाध दिन में सूली नहीं लग रही है। आदमी एकाध दिन मग सूली पर चढ़ता है। देश हजारों साल तक सूलियों पर लटके रहते हैं। हिंदुस्तान हजारों साल से सूली पर लटका हुआ है, लेकिन हर आदमी की दाढ़ दुख रही है। लगने दो सूली, हमारी दाढ़ में द र्द है। उसका कुछ इंतजाम करना है। हर आदमी अपनी दाढ़ की बात कर रहा है। और यह सिखाया है। तथा धार्मिक लोगों ने। हिंदुस्तान के जितने भी श्रेष्ठ लोग कभी भी हुए हों—कोई बुद्ध—कोई महावीर—वे सभी एक अर्थों में कम्युनिस्ट थे। को ई अच्छा आदमी कम्युनिस्ट हुए बिना नहीं बच सकता है। नहीं बच सकता है—कम्‍ युनिस्ट हुए बिना। कम्युनिस्ट हुए बिना सिर्फ वही बच सकते हैं जो आंखें बिलकुल अंधी किए हैं या सव तरफ से अपने को बेईमानी या धोखा देने में संलग्न हैं। कोई आदमी इस बात से कैसे बच सकता है कि हर आदमी को समाज होने का अवस र मिले? कोई आदमी इस बात से कैसे बच सकता है कि हर आदमी को समान ि वकास का अवसर मिले। कोई आदमी इस बात से कैसे बच सकता है कि आदमी-आदमी की कीमत बराबर हो। कोई आदमी इस बात से कैसे बच सकता है कि म नुष्य का समाज वर्गों में विभक्त न हो। कोई बुद्धिमान आदमी, कोई विचार शील आदमी, कोई चरित्रवान आदमी कम्युनिस्ट हुए बिना नहीं बच सकता है। लेकिन,

कम्युनिस्ट होने से मेरा मतलब नहीं है। कि कोई मार्क्स का अनुयायी होकर अंधा हो जाए। कम्युनिस्ट होने से मेरा मतलब नहीं है कि कोई माओ का पागल हो जाए। कम्युनिस्ट होने से मेरा मतलब नहीं है कि कोई स्टैलिन और ट्राटस्की के पीछे अंधा होकर चलने लगे। जो अंधे होकर इस तरह चलते हैं उन्हें कम्युनिस्ट से बहुत कम मतलब है। वे पुराने तरह के विश्वासी लोग हैं, जिन्होंने नए गुरुओं को पकड़ लिया है। वे पुराने तरह के विश्वासी लोग हैं जो पहले राम को पकड़कर चलते थे, कृष्ण को पकड़कर चलते थे, क्रोध में उन्होंने राम और कृष्ण को छोड़ दिया, लेकिन पकड़ने का ढंग वही है। उन्होंने अब मार्क्स को पकड़ लिया। अब माओ को पकड़ लिया। पहले वह गीता को—बाइबिल को पकड़ते थे—अब उन्होंने दास कैपिटल को कम्युनिस्ट मैनिफेस्टों को पकड़ लिया। लेकिन पकड़ने का ढंग वही है। कुरान को जो पकड़ने का ढंग है मुसलमान का—तथाकथित कम्युनिस्ट का दास-कैपिटल को पकड़ने का ढंग वही है। उसकी बुद्धि वही है। वह कहता है, हमारी किताब में जो लिखा है वह सच है। वह कहता है, हम जो कहते हैं वह ठीक है। वह कहता है—इतिहास की परिपूर्ण वैज्ञानिक व्याख्या हमने कर दी। अब इससे अन्यथा कुछ भी नहीं हो सकता है।

इन अंधे लोगों को अगर आप कम्युनिस्ट कहते हैं तो मैं कम्युनिस्ट बिलकुल नहीं हूं। अगर आप उनको कम्युनिस्ट कहते हैं, जो सोचते हैं कि हम आदमी को—जबरदस्ती आदमी की जीवन व्यवस्था को—समाज की जीवन-व्यवस्था को—एक छोटा सा अल्पमत, बहुमत को जबरदस्ती छाती पर। हावी होकर छुरे की धार पर बदल दे तो मैं कम्युनिस्ट नहीं हूं। क्योंकि मैं मानता हूं कि किसी अल्पमत को यह हम नहीं है कि वह चाहे बहुमत के हित में ही, बहुमत के साथ जबरदस्ती करे। अब तक दुनिया में हमेशा बहुमत के साथ जबरदस्ती की। एक मुसलमान है, वह सोचता है कि अगर सारे लोग मुसलमान हो जाए तो उनका हित होगा। और वह ईमानदारी से सोच सकता है। सींसियर हो सकता है सोचने में कि हर आदमी को मुसलमान होना चाहिए। नहीं तो ये बेचारे स्वर्ग जाने से वंचित रह जाएंगे। नर्क नहीं जा सकेंगे। वह तलवार उठाकर आपकी छाती पर चढ़ जाता है। और कहता है कि तुम मुसलमान हो जाओ नहीं तो तुम नर्क चले जाओगे। मैं तुम्हारे हित के लिए कहता हूं कि तुम्हें मुसलमान हो जाना चाहिए। नहीं मानोगे तो जबरदस्ती तुम्हें मुसलमान बनाऊंगा। वह जो काम कर रहा था वही वे कम्युनिस्ट कर रहे हैं जो समाज की छाती पर जबरदस्ती, और हिंसा के द्वारा समानता लाना चाहते हैं। हिंसा से समानता का आधार है। जो आदमी हिंसा करता है और जिसके साथ हिंसा होती है—जिसके साथ हिंसा होती है वह नीचे दब जाता है। जो हिंसा करता है वह ऊपर उठ जाता है। दो वर्ग फिर खड़े हो जाते हैं। हिंसा करने वाला मालिक हो जाता है, जिसके साथ हिंसा की जाती है वह फिर दरिद्र हो जाता है। वह फिर दीन हो जाता है। वह फिर दब जाता है। रूस में क्रांति हुई, चीन में क्रांति हुई, लेकिन ये क्रांतियां उस कम्युनिज्म को अभी नहीं ला पाएंगी जिसकी मैं आकांक्षा करता

हूं। ये क्रांतियां पूंजीवाद की, बीमारी को बदलने की पागल कोशिशें हैं। इन क्रांतिय
ों से पूंजीवाद का वर्ग विभाजन टूटेगा। नया वर्ग विभाजन खड़ा हो जाएगा। वह रू
स मग भलीभांति खड़ा हो गया है। जो कल मालिक था वह अब मैनेजर है। जो
कल मजदूर था वह अब भी मजदूर है। उन दोनों के बीच के फासले कम हुए हैं।
तनख्वाह का फर्क कम हुआ लेकिन प्रतिष्ठा में और प्रतिष्ठा के भेद में कोई नहीं प.
डा है। और धन रहे, आदमी धन भी इसलिए इकट्ठा करता है कि धन प्रतिष्ठा ला
ता है। अगर प्रतिष्ठा लाने की दूसरी तरकीबें मिल जाए तो आदमी धन भी इकट्ठा
नहीं करेगा। रूस में कम्युनिस्ट पार्टी के मेंबर की जो प्रतिष्ठा है वह प्रतिष्ठा गैर
कम्युनिस्ट की नहीं है। और गैर कम्युनिस्ट की हिम्मत जुटानी भी बहुत मुश्किल है।

मैंने सुना है कि ख्रुश्चेव जब हुकूमत में आया। एक मजाक मैंने सुना है। मैंने सुना
है कि ख्रुश्चेव रूस की कम्युनिस्ट पार्टी के सार बड़े लोग के बीच स्टैलिन की निंदा
कर है। जोर से गालियां दे रहा है और कह रहा है कि स्टैलिन ने यह बुरा किया
, वह बुरा किया। एक आदमी पीछे पूछता है कि आप स्टैलिन के साथ जिंदगी भर
रहे। स्टैलिन के मरने पर आप यह बातें क्यों कर रहे हैं? जब स्टैलिन जिंदा था,
तब आपने क्यों नहीं कहा? ख्रुश्चेव एक सेकेंड को चुप हो गया, और फिर उसने
कहा, जो महाशय यह पूछते हैं, कृपया खड़े होकर अपना नाम बदा दें। कोई खड़ा
नहीं हुआ। किसी ने नाम नहीं बताया। ख्रुश्चेव ने कहा—समझे—जिस कारण से तु
म खड़े नहीं हो रहे और नाम नहीं बता रहे, उसी कारण से मुझे भी चुप रह जान
ा पड़ा।

ठीक है, पूंजीवाद की एक तकलीफ है। गरीब और अमीर के बीच एक फासला है
, वह मिटाना चाहिए। लेकिन अगर नया फासला खड़ा हो जाए तो हमने बीमारी
बदल ली, और कुछ नहीं किया। नया फासला रूस में खड़ा हो गया। वह नया फा
सला चीन में भी खड़ा हो गया है। एक प्रयोग किया उन्होंने हिम्मत का और उस
हिम्मत के प्रयोग के लिए जितनी दाद दी जाए उतनी थोड़ी है, लेकिन वह प्रयोग
असफल हो गया, कम्युनिज्म आ नहीं सका। कम्युनिज्म को आने में और वक्त लग
जाएगा। और देर लग जाएगी। साम्यवाद तो तभी आ सकेगा, जब साम्यवाद का
जीवन-दर्शन एक-एक व्यक्ति के प्राणों में प्रविष्ट हो जाए। साम्यवाद का जीवन-दर्श
न तभी प्रविष्ट हो सकता है, जब प्रत्येक व्यक्ति को यह खयाल हो जाए कि मुझे
न छोटा होना है, न बड़ा होना है। वह जो एंबीशन है एक-एक आदमी के भीतर
बड़े होने की, अगर वह नहीं मिटती है तो दुनिया में साम्यवाद कितनी ही कोशिश
से ले जाओ, जैसे ही कोशिश ढीली, फिर पूंजीवाद आना शुरू हो आएगा।

वह जो आदमी के भीतर महत्वाकांक्षा है, जब तक नष्ट न हो जाए, तब तक साम्
यवाद स्थापित नहीं हो सकता।

और मेरा मानना है कि धर्म अकेला एक विज्ञान है, जो मनुष्य के भीतर महत्वाकां
क्षा को नष्ट करने की कोशिश करता है। और इसलिए मैं यह कहना चाहता हूं ि

क धर्म जब पृथ्वी पर आएगा पूरी तरह, तो उसके साथ ही साम्यवाद भी आ सक
ता है। उसके पहले नहीं। और ध्यान रहे, जब तक धार्मिक आदमी कम्युनिस्ट नहीं
होगा तब तक कम्युनिस्ट झूठे कम्युनिस्ट के हाथ में रहेगा और झूठे कम्युनिस्ट उत
ने ही खतरनाक सिद्ध होने वाले हैं जितना कि पूंजीपति सिद्ध हुआ है—सामतवादी
सिद्ध हुए हैं। ठीक कम्युनिज्म—ठीक कम्युनिस्ट पैदा करना जरूरी है, और इसलिए
मैं मानता हूं कि वे लोग, जो परमात्मा को प्रेम करते हैं, सत्य की खोज करते हैं,
जो एक-एक आदमी के भीतर परमात्मा की झलक देखते हैं, जब तक वे कम्युनि
स्ट नहीं हो जाते, तब तक कम्युनिज्म के लिए कोई भाग्यपूर्ण अवसर नहीं है। मैं
कम्युनिस्ट हूं, लेकिन मेरा अर्थ आप समझ लेना। और मैं मानता हूं, कोई भी धार्मि
मक आदमी कम्युनिस्ट हुए बिना कैसे रह सकता है? क्राइस्ट कम्युनिस्ट हैं और बु
द्ध भी, और महावीर भी, और लाओत्से भी, और शंकर भी। सब विचारशील लो
ग जगत के कम्युनिस्ट ही रहे। चाहे कम्युनिज्म का शब्द उस दिन रहा हो या न र
हा हो। जिन लोगों ने भी यह कामना की है और प्रार्थना की है कि सबका कल्याण
हो। जिन लोगों ने भी यह चाहा है कि सब समान हों। जिन लोगों ने भी सपने दे
खे हैं कि वह वक्त आ जाए कि कोई आदमी ऊंचा न हो, कोई आदमी नीचा न
हो, और जिसने भी यह दर्शन किया है कि सब के भीतर एक ही परमात्मा विराज
मान है। वे सब कम्युनिस्ट हैं। लेकिन, जिसे हम कम्युनिस्ट कहते हैं, उसको परमात
मा से भी कोई मतलब नहीं है। उसे आत्मा से भी कोई मतलब नहीं है।उसे बहुत
गहरे में भी हम देखें तो मनुष्य की समानता से भी कोई मतलब नहीं है। क्योंकि ि
जसका हिंसा में विश्वास है उसका असमानता में विश्वास है। जिसका जबरदस्ती में
विश्वास है उसे आदमियों के भीतर जो स्वतंत्र चिंतन है उस पर विश्वास नहीं है
। वैसा मैं कम्युनिस्ट नहीं हूं और वैसे कम्युनिस्टों से निरंतर लड़ता रहूंगा, इसलिए
मेरी लड़ाई भी बड़ी मुश्किल की है—कम्युनिज्म के लिए लड़ना है—और कम्युनिस्टों
में लड़ना है। धर्म के लिए लड़ना है—और धार्मिक से लड़ना है। आस्तिकता के लि
ए लड़ना है और आस्तिकों से लड़ना है। तब बड़ी मुश्किल हो जाती है। तब बड़ी
कठिनाई हो जाती है।

एक और मित्र ने पूछा है, कि मैंने सुबह कहा कि परमात्मा को खोजना हो तो वि
श्वास के द्वार से नहीं खोज सकते हैं। तो वे कहते हैं कि अगर हम विश्वास न क
रेंगे, तब तो छोटे-छोटे काम करने भी मुश्किल हो जाएंगे?

बड़ी मजे की बात है। मैंने आपसे कहा कि छोटे-छोटे काम के दरवाजे पर भी लि
खा है कि विश्वास नहीं है। मैंने कब कहा, उन मित्र ने पूछा है कि कार चलानी
है तो विश्वास करना पड़ेगा कि इंजन चलेगा। बड़े मजे से विश्वास करते रहिए।
लेकिन भगवान की तरफ जाने को, कार का चलाना मत समझ लेना। उन्होंने कहा
कि दुकान पर जाएंगे और चीज खरीदेंगे तो दुकानदार पर विश्वास करना पड़ेगा
कि वह ठीक ही बता रहा है। बिलकुल ठीक कह रहा हैं आप, बिलकुल विश्वास
करना। हालांकि इस मूल्य में हालतें नहीं रह गई कि दुकानदार पर विश्वास किया

जाए। लेकिन फिर भी करना। नहीं तो काम चलना मुश्किल हो जाएगा। लेकिन परमात्मा किसी दुकान पर बिकने वाली चीज नहीं है कि आप खरीदने जाएं और पुरोहित पर विश्वास करें। मैंने परमात्मा के लिए कहा है। और वे कह रहे हैं कि दुकान पर चीज खरीदनी होगी तो विश्वास करना पड़ेगा।

एक दूसरे मित्र ने पूछा है कि यह तो मानना ही पड़ेगा कि पिता हमारा पिता है, क्योंकि हमें कैसे पक्का पता चल सकता है?

अगर यह मानना पड़ता है आपको कि पिता-पिता है, तो भी आपको शक तो है ह ी। पता कहां चल गया है? अमरीका में एक युवक एक आंदोलन चला रहा है, शा यद आपको पता न हो—हिम्मतवर युवक होगा। एक आंदोलन चला रहा है, कि स् कूलों में, कोलेजों में कहीं भी किसी फार्म पर पिता का नाम मैं नहीं भर सकता हूं , सिर्फ मां का नाम भर सकता हूं। क्योंकि पिता का नाम विश्वास योग्य नहीं है। ठीक कह रहा है वह। इस मुल्क में भी लड़के समझदार होंगे तो यह कहेंगे कि हम मां का नमा भरेंगे पिता का नाम नहीं भर सकते। पिता बिलकुल ही गैर जरूरी है, एडीशनल है। पिता कोई बहुत एसेंशियल नहीं है। असली बात तो मां है। लेकि न स्त्री की चूंकि प्रतिष्ठा नहीं है, इसलिए पिता का नाम लिखा जा रहा है। लिखा तो जाना चाहिए, मां का नाम ही। ठीक-ठीक उसका ही पता है। पिता का तो ठ ीक-ठीक पता नहीं है। लेकिन पिता ने कब्जा कर रखा है। औरतों पर। औरतों त क का नाम पति के नाम से जाना जा रहा है। बेटे का नाम भी पिता के नाम से जाना जा रहा है। यह पिता का शोषण बहुत हो चुका। अच्छी दुनिया बनेगी तो पि ता तो खो जाएगा। पिताजी को सावधान रहना चाहिए। पिता बहुत दिन चलने वा ले नहीं। अब। मां कहेगी——मां की प्रतिष्ठा होगी। मां बचनी चाहिए। यही सच है। और वही ठीक है। आप ठीक पूछते हैं। लेकिन काम चलाने के लिए आप झंझट में मत पड़ना। पिता को माने चले जाना। लेकिन, यह परमात्मा को खोजना पिता के मानने जैसा झूठ नहीं है। परमात्मा को खोजना है, लेकिन कुछ नासमझों ने पर मात्मा को पिता की शक्ल दे रखी है। वह कहते हैं—गाड इज दी फादर। हद हो ग यी। यहां पिता ही बहुत खतरनाक है, और तुम परमात्मा को पिता बनाने को कोि शश में लगे हो? लेकिन चूंकि पुरुषों का समाज है, इसलिए पुरुषों ने परमात्मा को भी अपनी शक्ल में निर्मित किया है। वह कहते है, पिता है परमात्मा। यह पिता परमात्मा भी इसी तरह विश्वास का आधार बना हुआ है जिस तरह खुद पिता ब ने हुए है।

नहीं, परमात्मा पिता नहीं है—परमात्मा न पिता है, न पुत्र है, न मां है। परमात्मा तो समग्र अस्तित्व है। उस अस्तित्व को खोजना पड़ेगा, मानना नहीं पड़ेगा। वह जो मैंने कहा, विश्वास मत करना, वह इसलिए नहीं कि तुम परमात्मा से छूट जा ओ, बल्कि इसलिए कि ताकि तुम पहुंच सको उस तक। और जब तक विश्वास ि कए हुए हम बैठे हैं, वह विश्वास हमारी धारणा है, उससे ज्यादा नहीं है। हमारी जैसी तबीयत है हम वैसा माने बैठे हैं। हमें जो प्रचारित किया है वह हमने मान ि

लया है। आप परमात्मा को मानते क्यों है? बचपन से प्रचारित किया गया है। सि
खाया गया है। वह है। बीमारी में सुख-दुख में, हाथ जुड़वाए गए हैं। वह है। परीक्ष
ा में, डर में, भय में कहा गया है, वह है। बैठ गया है भीतर, वह बैठता चला ग
या है भीतर। एक प्रोपेगंडा है, वह भीतर बैठ गया है। एक धारणा पकड़ ली है। ि
फर आप कहते हैं कि मैं परमात्मा को मानता हूं। आपके भीतर से सिर्फ प्रचार बो
ल रहा है। आप रूस में पैदा हों तो वहां दूसरा प्रचार चल रहा है कि परमात्मा न
हीं है। तो वहां के बच्चे के दिमाग में यह बैठ गया है कि परमात्मा नहीं है। वह
भी विश्वास है, आप भी विश्वासी हैं। और कोई विश्वासी कभी प्रभु के मंदिर में प्र
वेश नहीं पा सकता है। एक नास्तिक विश्वासी है, एक आस्तिक विश्वासी है। विश
्वासी कभी नहीं पहुंच सकता है वहां। वहां तो वे पहुंचते हैं जो विचार करते हैं।
जो खोजते हैं। लेकिन हम विश्वास क्यों कर लेते हैं? इतनी जल्दी। कुछ कारण हो
गा। यह परमात्मा को बिना देखे बिना जाने विश्वास कैसे कर लेते हैं? कुछ वजह
है।

और वजह है। हमें इतना आत्मविश्वास नहीं कि हम खोज सकें। आत्मविश्वास की
कमी दूसरों के ऊपर विश्वास बन जाती है। जो आदमी जितना अपने पर कम वि
श्वास करना है वह उतना ज्यादा दूसरों पर विश्वास करता है और मैं कहता हूं,
अपने पर विश्वास करना, क्योंकि अपने सिवाय कौन खोजेगा, कैसे खोजेगा? खोज
ना तो मुझे होगा। जानना मुझे होगा। अपने से विश्वास तो समझ में आता है, दूस
रे से विश्वास समझ में नहीं आता। हो भी सकता है, अपने से विश्वास करने से र
ास्ता भटक जाए, गड्ढे में गिर जाएं। लेकिन कोई हर्ज नहीं, खोजी गड्ढे में गिरने से
नहीं डरता है। न रास्ता भटकने से डरता है, न भूल करने से डरता है। क्योंकि
जो भूल नहीं करता, जो भटकता नहीं, जो गिरता नहीं, वह चल ही नहीं सकता
है। कहीं पहुंच ही नहीं सकता है। खोजी भूल करने की हिम्मत दिखाता है। भटकने
की हिम्मत भी दिखाता है। लेकिन खोजी यह कहता है कि कृपा करके मेरा हाथ
पकड़कर मुझे मत चलाओ। अगर तुमने हाथ पकड़ कर मुझे पहुंचा भी दिया तो
भी मैं कभी नहीं पहुंचूंगा। मेरा पहुंचना तो प्रक्रिया से गुजर कर ही हो सकता है।
मैं तो उसी से निखरूंगा। इसलिए खोजी विचार करता है। खोजी का मतलब अविश
्वासी नहीं है।

एक मित्र ने पूछा है, क्या आप विश्वास सिखाते हैं?

मैं अविश्वास सिखाऊंगा। जो आदमी विश्वास तक नहीं सिखाता, वह अविश्वास सि
खाएगा।

एक मित्र ने पूछा है, आप नास्तिकता सिखाते हैं?

जो आदमी आस्तिकता तक सीखने से बचाना चाहता है, वह नास्तिकता सिखाएगा
? मैं न आस्तिकता सिखाता हूं, न न नास्तिकता सिखाता हूं। मैं न विश्वास सिखा
ता हूं, न अविश्वास सिखाता हूं। मैं यह भी कहता हूं कि विश्वास से भी मुक्त रह
ना, अविश्वास से भी मुक्त रहना, और मुक्त रहकर खोजना। पक्षपात में मत बंध

ना। निष्पक्ष होकर खोजना—दोनों पक्ष हैं। और ध्यान रहे, विरोधी पक्ष एक ही सिक के के दो पहलू होते हैं। उनमें कोई बहुत फर्क नहीं होता है। विरोधी पक्ष एक ही सिक्के के दो पहलू होते हैं। आस्तिक और नास्तिक एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। कोई बहुत फर्क नहीं है। वह एक ही चीज की पीक है, वह एक ही चीज का चेहरा है।

मैं एक मित्र को जानता हूं, एक बड़े वकील को वे प्रिवी कौंसिल में एक मुकदमा लड़ते थे। बड़े वकील थे। भारी व्यस्त थे। रात कुछ उलझन में थे, कुछ काम में थे। देख नहीं पाए, फाइल नहीं देख पाए मुकदमे की। बिना फायल देखे अदालत पहुंच गए। खड़े हो गए जिरह करने को। भूल गए कि मैं पक्ष में हूं कि विपक्ष में। तो जिसके पक्ष में बोलना था उसी के विपक्ष में बोलने लगे। उनका ग्राहक तो घबड़ा गया। उसके हाथ-पैर कंप गए कि यह क्या हो रहा है! मेरे ही खिलाफ दलीलें दी जा रही हैं, मेरा ही वकील! और जब मेरा वकील मेरा खंडन कर रहा है तब तो मैं मर गया। विरोधी का वकील तो खंडन करेगा ही। अब मेरा बचाव क्या है? बामुश्किल मुंशी ने उनका थोड़ा कोट खींचा। लेकिन वह तो इतने तल्लीन थे जिरह में कि उन्होंने झटका दे दिया। आखिर मुंशी ने जोर से कोट में झटका दिया और कान में जाकर कहा, आप कर क्या रहे हैं? आप अपने ही पक्ष के खिलाफ बोल रहे हैं। उन्होंने कहा, अरे, तुमने इतनी देर तक क्यों नहीं कहां? यह तो बहुत लंबी बात हो गयी। लेकिन कोई हर्ज नहीं। उन्होंने कहा, माई लार्ड, मजिस्ट्रेट से कहा, अब तक मैंने वे दलीलें दीं जो मेरा विपक्षी देगा, अब मैं खंडन शुरू करता हूं।

ये एक ही सिक्के के दो पहलू है। ये खंडन और मंडन दो चीजें नहीं हैं। इनमें कोई बहुत फर्क नहीं है। यह सिक्के को कैसे भी उलटाया जा सकता है। इसीलिए तो यह मजा है कि न नास्तिक जीत पाते हैं न आस्तिक जीत पाते हैं। क्योंकि आधा-आधा सिक्का दोनों के हाथ में है। कोई जीत सकता। पूरा सिक्का किसी के हाथ में नहीं है। आस्तिक नहीं जीत पाए आज तक। कितनी दलीलें दी हैं आस्तिक नहीं जीत पाए आज तक। किसी दलीलें दी हैं आस्तिकों ने ईश्वर के लिए? कोई दलील नहीं जीत पायी! सच तो यह है; ईश्वर के लिए जो दलील पैदा है, वह ईश्वर को जानता ही नहीं। ईश्वर के लिए जो तर्क देता है, उसे ईश्वर का कोई पता ही नहीं है। तर्क देने वाला सिद्ध करने की कोशिश करता है। सिद्ध करने की कोशिश उसी के लिए की जाती है जो सिद्ध न हो। ईश्वर परम-सिद्ध है। स्वयं-सिद्ध है। क्योंकि वह समस्त है। उसे सिद्ध करने की कोई भी जरूरत नहीं है। जो सिद्ध करने जाता है ईश्वर को, वह मानकर चलता है कि ईश्वर को भी सिद्ध किए जाने की जरूरत है और वह यह भी मानकर चलता है कि मैं सिद्ध न करूं तो बेचारा ईश्वर असिद्ध रह जाएगा। वह ईश्वर से हमेशा बड़ा सिद्ध करने वाला होता है। और इसी सिद्ध करने वाले की वजह से ईश्वर को असिद्ध करने वाला मौजूद हो जाता है। वह इसी का रिएक्शन है, वह इसी सिक्के का दूसरा पहलू है।

एक गांव में एक फकीर था। वह ऐसी गड़बड़ बातें करने लगा था कि गांव की पं चायत चिंतित हो गयी और गांव की पंचायत ने कहा कि इसे बुलाना पड़ेगा और समझना पड़ेगा। इसके तर्क समझने पड़ेंगे और सिद्ध करना पड़ेगा कि क्या बातें क ह रहा है। तेरी बातें गलत हैं। फकीर को निमंत्रण मिला पंचायत से, कि आज संध या पंचायत में हाजिर हो जाओ। फकीर अपने गधे पर बैठकर पंचायत की तरफ चला। लेकिन गधे पर वह उल्टा बैठा उसने अपना मुंह गधे की पीठ की तरफ रख ा है। जब पंचायत में पहुंचा तो सारे पंच हैरान हुए कि फकीर का दिमाग क्या बि लकुल खराब हो गया है। गधे पर उल्टा बैठकर चला आ रहा है। उन सबने घेर ि लया, वे कहने लगे, दिमाग खराब हो गया है? उसने कहा, पहले पक्का पता चल जाए कि किस कारण से आप कह रहे हैं कि मेरा दिमाग खराब हो गया है। उन्ह ोंने कहा कि तुम गधे पर उल्टे बैठे हो। उसने कहा, तब ठीक है। तुम भी गधे की जाति के हो। उन्होंने कहा, मतलब? उस फकीर ने कहा कि असल बात यह है ि क गधा उल्टा खड़ा हुआ है, मैं तो सीधा ही बैठा हुआ हूं। और गधा भी यही सम झ रहा है कि मैं उल्टा बैठा हुआ हूं। इसलिए मैं कहता हूं तम सब लोगो से—कहा पंचायत से, आपसे नहीं कह रहा हूं। उसने कहा, पंचायत के तुम सब लोग भी गधे की जाति के हो। गधे भी चलने में गड़बड़ कर रहा है। वह समझ रहा है कि मैं उल्टा बैठा हुआ हूं। सच बात यह है कि गधा उल्टा खड़ा हुआ है। पंचायत के लोगों ने कहा, इस आदमी से बातचीत करनी व्यर्थ है। और उस फकीर ने कहा कि इसीलिए मैं पहले ही यह मामला ले आया। यह एक ही चीज की दो शक्लें हैं। जो कहोगे, उसके खिलाफ कहा जा सकता है। और न खिलाफ को सिद्ध किया ज ा सकता है और न तुम जो कहते हो उसको सिद्ध किया जा सकता है।

तर्क—बड़ी कमजोर दुनिया है, तर्क की। मैं न कह रहा हूं कि विश्वास को पकड़ो। विश्वास वाला भी कहता है, तर्क है हमारे पा। आर्गुमेंट है। अविश्वास वाला भी क हता है, तर्क है हमारे पास आर्गुमेंट है। हम कहते हैं, ईश्वर नहीं है। आत्मा नहीं है। मैं दोनों की बात नहीं कह रहा। मैं कुछ तीसरी ही बात कह रहा हूं जो इन तीन दिनों में धीरे-धीरे साफ हो सकेगी। मैं यह कह रहा हूं, विश्वास से भी मत बंधना। और अविश्वास से भी मत बंधना। और क्यों यह कह रहा हूं? क्योंकि जो आदमी ऊपर से विश्वास से बंधता है उसके भीतर अविश्वास होता है, दूसरा पहलू उसके भीतर रहेगा। कांशस माइंड में, चेतन मन में, वह विश्वासी होगा, अचेतन में अविश्वासी होगा। चेतन में आस्तिक होगा, अचेतन में नास्तिक होगा। जो चेत न में नास्तिक होगा उसके भीतर आस्तिक छिप जाएगा। उल्टा पहलू नीचे दब जा एगा। इसलिए ऐसा कोई आस्तिक नहीं है जिसके भीतर नास्तिक न बैठा हो। और ऐसा कोई नास्तिक नहीं है जिसके भीतर आस्तिक न बैठा हो। और आस्तिक जब लड़ता है तो किससे लड़ता है? आपको पता है, आपसे नहीं लड़ रहा है। अपने ही नास्तिक से लड़ता है बेचारा। अगर नास्तिक लड़ता है तो किससे लड़ता है? अ ापसे नहीं लड़ता है? अपने ही आस्तिक से लड़ता है। यह लड़ाई भीतरी है। लेकिन

जो आदमी धार्मिक है, जो आस्तिकता-नास्तिकता दोनों को फेंक देना है, और क
हता है, न मुझे पता है कि ईश्वर है, न मुझे पता है कि ईश्वर नहीं है। मैं खोजूंग
ा। मुझे पता नहीं है। मैं खोज पर निकलता हूं। जो भी होगा वह मैं खोजकर तय
करूंगा। मैं पहले से तय नहीं करता खोज पर निकलने के पहले तय कर लेना तो
बहुत बुरा है।

एक मित्र हैं जयपुर में, डाक्टर बनर्जी। उनका नाम आपने सुना होगा। वह पुनर्जन्म
सिद्ध करने के लिए कथाएं खोजते हैं। बंबई में मेरा उनसे मिलना हुआ। कुछ मि
त्र बड़ी आकांक्षा किए कि दोनों जन मिले। मैं तो हमेशा तैयार हूं, मिलने को तैया
र हो गया। उन डा. बनर्जी ने कहा शुरू बातचीत में—कि मैं वैज्ञानिक रूप से सिद्ध
करना चाहता हूं कि पुनर्जन्म है। मैंने कहा, आप सिद्ध करना चाहते हैं। उन्होंने
कहा हां। मैं सिद्ध करना चाहता हूं कि पुनर्जन्म है। फिर मैंने कहा, आप वैज्ञानिक
नहीं हैं, क्योंकि आपने पहले ही मान रखा है कि पुनर्जन्म है। अब इसको सिद्ध क
रना है। वैज्ञानिक बुद्धि का आदमी कहता है कि मैं पता लगाना चाहता हूं कि पुन
र्जन्म है, या नहीं है। मैंने कुछ मान नहीं लिया। जिसने पहले ही मान लिया है, व
ह सिद्ध कर लेगा कि जो उसने मान लिया है। लेकिन तव वह खोज वैज्ञानिक नहीं
रह जाएगी। वैज्ञानिक होने का मतलब यह है कि मैं मानकर नहीं चलता कि क्य
ा है? मैं आंख खोलकर चलूंगा, और जो होगा वह कहूंगा, कि है। और नहीं होगा
, कहूंगा कि नहीं हूं। अवैज्ञानिक, विश्वासी, अविश्वासी, आस्तिक, नास्तिक, पक्षपा
ती, वे कहते हैं, हम पहले मानकर चलते हैं कि ईश्वर है। कोई कहता है, ईश्वर
नहीं है। और अब हम सिद्ध करेंगे, अब हम खोज करेंगे। अब क्या खाक खोज करे
गा? जब मान ही लिया तो खोज नहीं होगी। जो भी आपने मान लिया है उसके ि
लए आप तर्क खोज लेंगे, जगत इतना बड़ा है कि यहां हर चीज के लिए तर्क औ
र पहलू उपलब्ध हो जाएंगे।

एक आदमी ने अमरीका में एक किताब लिखी है कि १३ का अंक अपशकुन है।
और इतना वैज्ञानिक किताब लिखी है कि आप कहेंगे कि हां, बिलकुल वैज्ञानिक है
। यह तो मानता ही है कि १३ तारीख अपशकुन है। यह तो पहले ही माना हुआ
है। अब सिद्ध करना है। उसने पता लगाया कि तेरहवीं मंजिल से कितने लोग कब
-कब कहां-कहां गिरे हैं। अमरीका में कई तो ऐसे मकान हैं, जिनमें तेरहवीं मंजिल
होती ही नहीं। क्योंकि तेरहवीं मंजिल पर कोई रहने को राजी नहीं होता। बारह
वीं के बाद सीधी चौदहवीं आती है, तेरहवीं होती नहीं। क्योंकि तेरहवीं को किरा
ए पर उठाना मुश्किल है। इसलिए तेरहवीं मंजिल नहीं होती। कई मकानों में नहीं
होती तेरहवीं मंजिल। उस आदमी ने पता लगाया है कि तेरहवीं मंजिल से कौन-
कौन, कब-कब कहां-कहां गिरा है। तेरहवीं तारीख को कौन-कौन एक्सीडेंट होते हैं
। तेरहवीं तारीख को कहां-कहां आग लगती है। तेरहवीं को कौन-कौन जहाज डूब
ता है। तेरहवीं तारीख को कौन-कौन हवाई जहाज गिरता है। तेरहवीं तारीख को
की गई कौन-कौन शादियां टूटती हैं। सब उसने इकट्ठा किया है। तेरह तारीख को

पैदा हुए कितने बच्चे मर जाते हैं, यह इकट्ठा किया है। अब तेरह तारीख बड़ी घ
टना है। तेरह तारीख को सब कुछ होता है। उसने सब इकट्ठा कर लिया है, जो-ज
ो अपशकुन है। भारी किताब लिखी है इतने उदाहरण दिए है, इतने आंकड़े दिए हैं
 कि लगेगा कि तेरह तारीख निश्चित ही अपशकुन है। लेकिन कोई अगर चाहे तो
 बारह तारीख के लिए भी यह इकट्ठा कर ले। कोई चाहे ग्यारह तारीख के लिए
इकट्ठा कर ले—जो मर्जी हो इकट्ठा कर ले। जिंदगी एक बहुत बड़ी घटना है। उसमें
 अनंत घटनाएं घट रही है। जिंदगी एक बहुत बड़ा रहस्य है, उसके अनंत पहल है
। अगर कोई आदमी पहले से पक्ष लेकर आता है तो अपने पक्ष की दलीलें खोज
लेगा। और दलीलें इकट्ठी कर लेगा। वह प्रजुडिस्ट है, वह पहले से तैयार है। वह
वही देखेगा जो देखना चाहता है। उसकी आंख पर चश्मा पहले से चढ़ा हुआ है। व
ह वही देखेगा जो देखना चाहता है। उसे वही दिखाई पड़ेगा। वही खोज लेगा। वही
। और सब इकट्ठा कर लेगा। और फिर समझेगा, मैंने कोई खोज की है। यह खोज
 न हुई—यह खोज नहीं है।

खोज का मतलब है कि मैं निष्पक्ष हूं—यह पहली शर्त है और मैंने जो सुबह आपसे
 कहा, विश्वास से मुक्त होने के लिए, तो उसका कोई और अर्थ नहीं है। उसका
अर्थ है निष्पक्ष होना। विश्वासी पक्षपात से भरा हुआ है। हिंदू है, मुसलमान है, झेन
 है, बौद्ध है—ये सब विश्वासी है। आस्तिक हैं, नास्तिक हैं, ये विश्वासी है। सोशलि
स्ट है, कम्युनिस्ट है, कांग्रेसी है, गांधीवादी है। ये सब विश्वासी है। और इनमें से
कोई भी सत्य को नहीं देखता। वही देखता है, जो देखना चाहता है।

रूस में क्रांति हुई १९१७ में। एक गांव था छोटा सा। उस गांव में एक स्कूल था।
उस स्कूल में एक ही शिक्षक था और एक ही विद्यार्थी था। दूर एकांत में वह गांव
 था। क्रांति हो गयी—१९१७ के बाद उस स्कूल की रिपोर्ट छपी। और रिपोर्ट में छ
पा गया है कि भारी प्रगति हुए है क्रांति के बाद शिक्षा में। दुगुनी प्रगति हुई है,
दुगुने विद्यार्थी हो गए हैं। सब जगह अखबारों में वह खबर छपी। और कुल बात इ
तनी हुई थी कि जिस स्कूल में एक विद्यार्थी था,अब दो हो गए थे। दुगुनी शिक्षा ह
ो गयी। गलत है कोई बात—दुगुने विद्यार्थी हो गए? गलत है को बात! जहां सौ
का आंकड़ा था, वहां दो सौ का आंकड़ा हो गया। कोई कम है यह बात? लेकिन
मामला कुल इतना था कि एक विद्यार्थी की जगह दो विद्यार्थी हो गए थे। लेकिन
वह जो देखने गया होगा जिस आंख से, वह आंख कम्युनिस्ट की रही होगी। वह क्र
ांति को बढ़ाकर दिखाने वाले का खयाल रहा होगा। उसकी कोई गलती नहीं है,
उसको ऐसा दिखा होगा। बेईमानी की है उसने? ऐसा नहीं, उसको ऐसा दिखाई दि
या होगा। यह बात बिलकुल सच ही है। इसलिए सरकारी आंकड़े सब झूठे हो जाते
 हैं। क्योंकि वे सरकार की आंख से देखे गए होते हैं। वही गरीब जनता की आंख
 से देखा जाए तो आंकड़ा बिलकुल दूसरा दिखाई पड़ेगा। स्थित बिलकुल दूसरी हो
गी। सरकार का आदमी जब देखता है, तब स्थिति और होती है। वही आदमी क

ल इलेक्शन हार जाए, और फिर देखता है तो स्थिति दूसरी हो जाती है। चश्मा ब
दल गया। पद के नीचे आ गया है। पक्ष बदल गया है तो सब बदल जाता है।
हम देखते नहीं, हम सिर्फ पक्षपात से घिरे हुए जीते हैं। सत्य की खोज पक्षपाती
के लिए नहीं है। प्रभु का मंदिर उनके लिए खुलता है जो निष्पक्ष है, अनप्रजुस्टि मा
इंड हैं। मन खुला है। जिनका वे वही देखेंगे, जो है। जो नहीं कहेंगे, जिनकी शर्त
नहीं है कि यह हो, जिनके ये आग्रह नहीं है। कि ऐसा होना चाहिए जो आदमी अ
ाग्रह से भरा है, वह सत्य का खोजी नहीं हो सकता। इसलिए मैं निरंतर कहता हूं
कि सत्याग्रह शब्द बड़ा खतरनाक है। सत्य का कोई आग्रह नहीं हो सकता। सब
आग्रह पक्ष के हैं। सत्य हमेशा अनाग्रह है। सत्य निराग्रह है। उसका कोई आग्रह न
हीं, कोई पक्ष नहीं। सत्य की खोज में यह कठिन तपश्चर्या है कि हम अपना आग्र
ह छोड़ दें।

मैंने सुना है, एक आदमी अपने हाथ पर शेर की तस्वीर खुदवाना चाहता था। कई
आदमी ऐसे हैं, जिनके भीतर कायर होता है—वे शेर की तस्वीर खुदवाकर मन
को तृप्ति देना चाहते हैं। अधिक आदमी ऐसे हैं। अलग में जो-जो तस्वीर खुदवाते
हैं, वे इसी तरह के आदमी होते हैं। चाहे वे तस्वीर किसी तरह की खुदवाए। एक
आदमी राम-राम लिखे हुए है खोपड़ी पर। यह आदमी खतरनाक है। इस आदमी
के भीतर रावण बैठा हुआ होना चाहिए, नहीं तो राम का बोर्ड कभी न लगाता।
इसके भीतर रावण है। और यह रावण से डरा हुआ है। और लगता है इसे कि
कोई रावण को न देख ले। लेकिन राम का बोर्ड लगाए हुए है। हम सब जानते है
—अगर नकली घी बेचना हो तो असली घी का बोर्ड लगाना पड़ता है। और जहां
असली शुद्ध घी का बोर्ड लगा हो, वहां हम जानते हैं कि निश्चित रूप से नकली
घी मिल जाएगा। अब तो नकली घी के भी होने की संभावना कम होती चली ज
ाती है। उसमें भी और ईजाद है। बोर्ड हमेशा उल्टा होता है। क्योंकि बोर्ड उसको ि
छपाने के लिए होता है, जो भीतर है। विनम्रता का बोर्ड जिसके चेहरे पर लगा हो
, वह आदमी अहंकारी होता है। वह विनम्रता ओढ़े रहता है।

वह आदमी बड़ा डरपोक था। अंधेरे में जाता था तो डर लगता था। उसने कहा,
हम शेर खुदवाएंगे, अपने हाथ पर। वह कविताएं हमेशा बहादुरी की करता था।
कमजोर आत्मा हमेशा कविताएं बहादुरी की करते हैं। हमारे मूल्य में युद्ध हो जा
ए तो देखो, कितनी बहादुरी की कविताएं पूरा मूल्क करता है। हर आदमी के दि
माग में एकदम कवि पैदा हो जाता है। सब राष्ट्र-कवि हो जाते हैं। हर आदमी अ
पनी-अपनी चौपाल, अपने-अपने घर के बाहर निकलकर कविताएं सुनाने लगता है
कि हम सिंह हैं—हम सोए हुए हैं, हमको छेड़ो मत। कभी किसी सिंह को यह कवि
ता करते देखा है? छेड़ो और पता गलता है कि मामला क्या है? जब सिंह नहीं ह
ोता है भीतर, तब कविता होती है कि हम सिंह हैं, हमको छेड़ो मत! उसको मार
ो तो वह कहेगा, हमको मारो मत, हम सिंह हैं, हम बहुत बदला लेंगे। लेकिन मा
रते चले जाओ, वह कविता करता चला जाएगा! अब वे सब सिंह कहां चले गए?

उनका कुछ पता नहीं है! वे जिस चीज के छेड़ने पर नाराज हुए थे, वह जमीन दबाकर बैठा है लाखों मील, अब वे सारे कवि कहां है? एक-एक कवि को पकड़क र मिलिट्री में भर्ती किए बिना इस मुल्क में कविता बंद नहीं होंगी। उन सबको भे जो कि अब तुमको छेड़ दिया गया बुरी तरह से। अब तुम उठो। अब वे कहेंगे कि नहीं, यह हमारा काम नहीं, हम सिर्फ कविता करते हैं।

वह आदमी भीतर डरपोक था, शेर की तस्वीर बनवानी थी। गया एक खोदने वाले के पास। उसने कहा, मेरे हाथ पर एक शेर की तस्वीर खोद दें, लेकिन शानदार शेर चाहिए बिलकुल, कि देख कर आदमी डर जाए। उसने कहा, खोद दूंगा। उस आदमी ने अपनी सुई उठायी और खोदना शुरू किया। खोदने में तकलीफ होती है। जरा ही बढ़ा था कि उसने कहा, ठहर-ठहर, कौन सा हिस्सा खोद रहा है? उसने कहा, पूंछ खोद रहा हूं। उसने कहा, जाने दे, पूछ के बिना चलेगा। बिना पूंछ का खोद दे। उस आदमी ने फिर सुई उठाई, और फिर उसे तकलीफ हुई। उस आदम ी ने कहा, ठहर, क्या जान ले लेगा? अब कौन सा हिस्सा खोद रहा है? उसने क हा, अब मैं चेहरा खोद रहा हूं। उसने कहा, बिना चेहरे का चलेगा। तू फिक्र मत कर। उस आदमी ने कहा, फिर क्षमा करो, मैंने बिना पूंछ और बिना चेहरे के शेर नहीं देखें!

यह ऊपर से खोदने वाला आदमी भीतर बिलकुल उल्टा है। यह क्या खोद रहा है? शेर खोद रहा है। लेकिन खुदवाने की हिम्मत नहीं है!

आदमी परमात्मा को खोजता है की हिम्मत भी नहीं है, इसलिए विश्वासी हो जात ा है। विश्वास ऊपर से खोदी गयी बातें हैं। उनसे ज्यादा कोई मूल्य नहीं है। खोजन ा चाहता है सत्य को, लेकिन खोजने का जो श्रम है, तपश्चर्या है, जो साधना है, उससे बचता है! वह कहता है कि हां, ठीक है, ऊपर से ही खोद दो। और खोदने के लिए सुई उठेगी तो वह कहेगा, चलो, यह भी जाने दो, यह भी जाने दो! इत नी तकलीफ हम नहीं उठा सकते! इससे तो वह अपना विश्वास अच्छा है। न कुछ करना पड़ता है, न कहीं जाना पड़ता है, न कुछ होना पड़ता है। चुपचाप विश्वास ओढ़ लो और परमात्मा को उपलब्ध हो जाओ। हम सब उपलब्ध हो गए हैं। हम सब उपलब्ध हो गए हैं परमात्मा को, विश्वास ओढ़कर।

विश्वास को ओढ़कर कोई कभी सत्य को नहीं पहुंचता है।

इसलिए मैंने सुबह आपसे कहा, हिम्मत जुटाओ, विश्वास छोड़ने की, अगर पाना ह ो ज्ञान। हिम्मत जुटाओ अंधे बनना छोड़ने की। अगर पानी हो आंखों में तो हिम्मत जुटाओ थोड़े विचार से गुजरने की, अगर उसके द्वार में प्रवेश की जरूरत हो। औ र अन्यथा, फिर उसकी फिकर छोड़ दो। फिर कहो, हमें कोई प्रयोजन नहीं, ईश्वर से, सत्य से। तो कम से कम एक बात तो साफ हो जाए, कि दुनिया में यह पता चल जाए कि किन लोगों को सत्य से प्रयोजन है, किनको प्रयोजन नहीं है। अभी पता ही नहीं चलता कि कौन शेर है, और कौन खुदाया हुआ शेर है। और खुदाए

हुए शेर इतने ज्यादा हैं कि सब उनको देखकर ऐसा समझते हैं कि खुदा लेना ही शेर हो जाना है!

आस्तिक हो जाना ऐसा नहीं है। ईश्वर की दिशा में धार्मिक हो जाना ऐसा नहीं है। इसलिए मैंने सुबह आपसे कहा। कल सुबह दूसरे सूत्र पर बात करूंगा। जो प्रश्न बच गए, कल संध्यान उनकी बात करूंगा।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उससे अनगृहीत हूं, और अंत में सब के भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

अहमदाबाद

दिनांक ८ जून १९६९, रात्रि

२ प्रवाह शीलता है द्वार

विश्वास अंधा द्वार है। अर्थात विश्वास द्वार नहीं है, केवल द्वार का मिथ्या आभास है। मनुष्य जो नहीं जानता है उसे इस भांति मान लेता है, जैसे जानता हो। मनुष्य के पास जो नहीं है, उसे वह इस भांति समझ लेता है वह उसके साथ हो। और तब खोज बंद हो जाए तो कोई आश्चर्य नहीं है।

मैंने सुना है, एक अंधेरी रात में एक जंगल से दो संन्यासी गुजरते थे। एक वृद्ध संन्यासी है, एक युवा संन्यासी है। अंधेरी रात है। बियावान जंगल है। अपरिचित रास्त है, गांव कितनी दूर है, कुछ पता नहीं। वह वृद्ध संन्यासी तेजी से भागा चला जाता है। कंधे पर झोला लटकाया है, उस जोर से हाथ से पकड़े हुए हैं। और बार-बार अपने युवा संन्यासी से पूछता है, कोई खतरा तो नहीं, कोई भय तो नहीं, कोई चिंता तो नहीं? युवा संन्यासी बहुत हैरान है, क्योंकि संन्यासी को भय कैसा, खतरा कैसा? और अगर संन्यासी को भय हो, खतरा हो, तो फिर ऐसा कौन होगा जिसे भय न हो, खतरा न हो? वह बहुत हैरान है कि आज यह वृद्ध संन्यासी बार-बार क्यों पूछने लगा है कि भय तो नहीं है कोई, खतरा तो नहीं है। डाकू-चोर तो इस जंगल में नहीं होते हैं, गांव कब तक पहुंच जाएंगे, और भागते है तेजी से। फिर एक कुएं पर वे रुक गए पानी पीने को। वृद्ध पानी जी भर कर पी रहा है। झोला उसने युवा संन्यासी को दिया है और कहा है, सम्हाल कर रखना। युवा को खयाल हुआ, हो न हो खतरा इस झोले के भीतर होना चाहिए। उसने हाथ डाला है, देखा एक सोने की ईंट भीतर है। उससे भय है, उससे खतरा है। उसने वह सोने की ईंट निकाल फेंक दी और एक पत्थर का टुकड़ा उसकी जगह रख दिया है। फिर वृद्ध पानी पीकर कुएं से नीचे उतरा। जल्दी से झोला अपने हाथ में लेकर कंधे पर टांगा। टटोल कर ईंट देखी। ईंट है। फिर तेजी से भागने लगा है वह। फिर रास्ते में बार-बार पूछता है, कोई खतरा तो नहीं है? कोई भय तो नहीं है? उस युवक ने कहा, अब आप निर्भय हो जाए। खतरे को मैं दो मील पीछे कुएं के पास ही फेंक आया हूं। वृद्ध ने घबड़ाकर झोले में हाथ डाला, वहां तो सोने की ईंट नहीं है। सिर्फ पत्थर का टुकड़ा है। लेकिन दो मील तक उस पत्थर के टुकड़े को वह सोने की ईंट समझे रहा, और भयभीत रहा। फिर झोला उसने वहीं पटक

दिया, फिर हंसने लगा और नाचने लगा और उसने कहा, अब गांव पहुंचने की कोई जल्दी न रही। अब कोई खतरा नहीं है। अब हम यहीं सो जाए। अब रात य ही विश्राम कर लें।

पत्थर की ईंट भी सोने की ईंट समझी जाए तो सोने की ईंट का भय पैदा करती है। लेकिन इससे वह सोने की ईंट नहीं हो जाती। जो हमारा ज्ञान नहीं है, उसे ज्ञा न समझा जाए तो ज्ञान का भ्रम पैदा कर देता है। लेकिन इससे वह हमारा ज्ञान नहीं हो जाता। जो हम नहीं जानते हैं, उसे हम कितना ही मान लें तो भी जानने के भ्रम के सिवाय उस मानने से कभी जानना पैदा नहीं होता, है। विश्वास असत य है। विश्वास अज्ञान है। और खतरा अज्ञान से उतना नहीं है, जितना विश्वास से है, क्योंकि अज्ञानी जानता है कि नहीं जानता हूं।

विश्वास ऐसा अज्ञान है, जो नहीं जानता और जानता है कि जानता हूं! अज्ञान ज ब यह जान लेता है जानता हूं, तब वह विश्वास बन जाता है। अज्ञान को अपना बोध हो, तो अज्ञान को तोड़ने की चेष्टा चलती है और अज्ञान अबोध हो जाए तो उसे तोड़ने का कोई कारण नहीं रह जाता।

मनुष्यता को विश्वास ने जितने अज्ञान में रखा है, उतना किसी और बात ने नहीं। अगर मनुष्य जाति इतने अज्ञान से भरी है, तो उसका सौ में से। निन्यानबे प्रतिश त कारण विश्वास की हजारों-हजारों वर्ष की शिक्षा है। विश्वास अज्ञान की सुरक्षा बन जाता है। अज्ञान को फिर वह नष्ट नहीं होने देता है। क्योंकि यह खयाल अगर पैदा हो गया कि हम जानते हैं, विना जाने हुए तो फिर जानने की यात्रा, अन्वेष ण बंद हो जाने ही वाला है।

कल मैं कहा, विश्वास नहीं है, उसका द्वार। आज कहना चाहता हूं, विचार है उस का द्वार। और विचार बिलकुल ही उल्टी चित्त-दिशा है।

विचार के क्या-क्या तत्व है?

विचार का पहला तत्व है संदेह, डाउट। संदेह नहीं तो विचार नहीं। विश्वास का प हला तत्व है संदेह नहीं। विचार का पहला तत्व है संदेह। जो संदेह कर सकता है, वही विचार करेगा असल में जो विचार करने की हिम्मत जुटाता है, वह संदेह क रता है। जो विचार करने से डरता है, वह संदेह ही नहीं करता। वह आंख बंद क रता है और मान लेता है। संदेह—एक छोटी सी घटना से समझाऊं।

अरस्तू तो इतना बड़ा विचारक हुआ, लेकिन तथाकथित बड़े से बड़े विचारकों के मन में भी विश्वास के कोने होते हैं, विश्वास के फोकस होते हैं। बड़े से बड़े विचा रक कहे जाने वाले लोगों के भी मन के बहुत से हिस्से विश्वास के ही होते हैं। ऑ लिवर लाज जैसे बुद्धिमान आदमी, वैज्ञानिक—लेकिन ताबीज बांधकर सोएगा, भूतों से डर है! भूत-प्रेत से वह डरता है! पिकासो का नाम आप जानते हैं—बड़ा चित्र कार, इतना बुद्धिमान, इतना विचारशील, लेकिन न मालूम कितने गड़े ताबीज बां धता है! बहुत डरता है—भूत-प्रेम से बहुत डरता है। कहीं कोई विश्वास का कोना भी है।

ऐसे ही अरस्तू बहुत विचार करता है, लेकिन विश्वास के भी कोने हैं, जिनका उसे खयाल भी न हो। उसने अपनी किताब में लिखा है, स्त्रियों के दांत पुरुषों से कम होते हैं, क्योंकि यूनान में हजारों साल से यह बात मानी जाती थी कि स्त्रियों के दांत पुरुषों से कम होते हैं! असल में पुरुष यह मानने को राजी ही नहीं हैं कि स्त्रियों में कुछ भी उनके बराबर हो सकता है। दांत भी कैसे बराबर हो सकते हैं! स्त्रियों के दांत, और पुरुषों के बराबर! यह पुरुष कैसे मान सकते हैं! यह पुरुष के अहंकार को बड़ी चोट की बात होगी। लेकिन कितना बड़ा आश्चर्य है कि किसी ने कभी स्त्री के दांत गिनने की कोशिश नहीं की। यह बात प्रचलित थी, प्रचलित रही और लोगों ने मान ली! अब स्त्री के दांत कितनी सुलभ बात है। घर-घर में स्त्रियां है, पुरुषों से थोड़ी ज्यादा ही है, कम नहीं हैं, और अरस्तू महाशय की तो दो औरतें थीं, एक भी नहीं। दो में से किसी मिसेज अरस्तू को वह कह सकते थे कि एक क्षण बैठ जाओ और जरा मुंह खोल दो, मैं दांत गिन लूं। लेकिन यह उन्होंने नहीं कहा! यह मान लिया। चलता था कि स्त्री के दांत कम है। और अरस्तू जैसे बुद्धिमान आदमी ने अपनी किताब में लिख दिया कि स्त्रियों के दांत कम होते हैं। और जब अरस्तू ने लिख दिया तो सारे लोगों को तो कहना ही क्या। अरस्तू का वाक्य तो प्रमाण है। एक हजार साल तक अरस्तू के मरने के बाद भी यह बात चलती रही कि स्त्रियों के दांत कम है। कल्पना नहीं होती। कि इतने लोग हैं, किसी ने संदेह न किया कि एक बार संदेह करे और दांत गिन लें।

विश्वास की जो परंपराएं हैं वह संदेह करती ही नहीं। और जब पहली बार आदमी ने स्त्री के दांत गिनकर कहा कि स्त्री के दांत पुरुष के बराबर है तो लोगों ने कहा, तुम्हारा दिमाग तो ठीक है? कभी स्त्रियों के दांत पुरुषों के बराबर हुए हैं? ऐसा कभी सुना है? अरस्तू की किताब देखी है? अरस्तू गलत लिखेगा? अरस्तू अज्ञानी है? तुमने कुछ गिनती में गलती कर ली होगी। या कोई गलत अपवाद स्त्री मिल गयी होगी। दांत तो स्त्रियों के कम ही होते हैं, लिखा है किताब में। संदेह की वृत्ति न हो तो अतीत का पिछड़ा हुआ ज्ञान भविष्य के विकसित मस्तिष्क के लिए जंजीर बन जाता है। और ध्यान रहे, कल जो हम जानते थे उससे आज हम ज्यादा जानते हैं। और आज जो हम जानते हैं, कल हम उससे ज्यादा जानेंगे। हजार साल पहले जो हम जानते थे उससे हम आज बहुत ज्यादा जानते हैं।

ज्ञान के स्रोत, पीछे नहीं हैं, ज्ञान के स्रोत निरंतर भविष्य में खुलते चले जाते हैं। लेकिन संदेह न करने वाली वृत्ति अतीत के पिछड़े हुए ज्ञान से जकड़ जाती है। और नए द्वार बंद हो जाते है। खुलना मुश्किल हो जाता। संदेह बहुत अदभुत गुण है। संदेह का अर्थ है, जो कहा गया है, जो सुना गया है, जो माना जाता है, उस पर फिर से समस्या खड़ी करना, उस पर प्रश्नवाचक लगाना। कुछ भी जीवन में जो महत्वपूर्ण है उसे बिना प्रश्न के स्वीकार न कर लेना। उस पर प्रश्न खड़ा करना पूछना, खोजना, जांचना, पड़ताल करना। लेकिन अगर संदेह ही खड़ा न किया तो ये सब वृत्ति हुई--कमजोर वृत्ति हुई--तो सब रुक जाता है। फिर कोई पूछता नहीं,

फिर कोई मानता नहीं। हजारों सवाल हैं जिंदगी के जो वहीं ठहरे हुए हैं, जहां ह जारों साल पहले उन्हें लोग छोड़ गए क्योंकि उन पर कोई संदेह नहीं उठा उन पर कोई विचार नहीं उठा। और फिर हम दोहराए चले जाते हैं। दोहराए चले जाते हैं आर दोहराने का एक परिणाम होता है मनुष्य के चित्त पर दोहराने का सम्मोह क असर होता है। कोई चीज दोहराए चले जाएं निरंतर, कि बिना फिक्र किए, कि कोई मानता है कि नहीं मानता है। दोहराते-दोहराते वह मानना शुरू कर देता है। वह भूल जाता है कि मैं नहीं मानता था। प्रश्न विलीन हो जाता है। सारे विज्ञाप नदाता यही कर रहे हैं।

रास्ते पर आप जाते हैं और बड़े-बड़े बिजली के अक्षरों में लिखा है हमाम साबुन। पहले तो एक ही तरफ के अक्षरों में लिखा रहता था, अब जलते-बुझते अक्षरों में लिखा जा रहा है। उन मनोवैज्ञानिकों ने कहा कि अगर तुमने बिना जलने बुझने वा ले अक्षरों में लिखा तो आदमी एक ही बार पढ़ता है। और अगर अक्षर बुझे फिर जले, फिर बुझे, फिर जले तो जितनी देर आदमी उस बार्ड के पास से निकलता है उसको उतनी ही बार पढ़ना पड़ता है जितनी बार अक्षर जलते हैं, बुझते हैं। उस के माइंड में बार-बार रिपीट होता है, हमाम साबुन। हमाम साबुन। हमाम साबुन। उसके मस्तिष्क में घुसाया जा रहा है। रेडियो खोले हमाम साबुन। अखबार खोले, हमाम साबुन। जहां भी जाए हमाम साबुन। बस उससे कहो मत कुछ। सिर्फ हमाम शब्द को उसके भीतर दोहराते चले जाओ, भीतर डालते चले जाओ। वह कल दु कान पर खरीदने जाएगा। सैकड़ों साबुन रखे है। दुकानदार पूछता है, कौन सा सा बुन आपको पसंद है? वह कहता है, हमाम साबुन। सिर्फ बेहोशी में बोल रहा है, उसे कुछ पता नहीं, वह क्या कह रहा है। होश में नहीं है, वह आदमी। वह हिप्नो टाइज्ड है। वह सिर्फ बेहोश हैं। वह कह रहा है हमाम साबुन। यह हमाम साबुन, द ोहरा-दोहरा कर उसके मस्तिष्क के रंग-रंग, रेशे-रेशे में भर दिया गया है। वह उ सकी जबान से निकल रहा है। सोचता है यह मैं कह रहा हूं, यह मैं सोचकर कह रहा हूं। यह वह सोचकर नहीं कह रहा है। यह सिर्फ विज्ञापन की कला उसके भ ीतर डाल दी है। जब आप कहते हैं, मैं हिंदू हूं तो आपने सोचकर कहा है? वही हमाम साबुन। आप कहते हैं, मैं मुसलमान हूं। अपने कभी सोचकर कहा है? वही हमाम साबुन। इनमें कोई फर्क नहीं है। बचपन से दिमाग में डाला जा रहा है, कि तू हिंदू है, तू मुसलमान है। बचपन से समझाया जा रहा है। यह भगवान है। यह कृष्ण। यह राम। यह क्राइस्ट। यह मोहम्मद है, यह पैगंबर है। यह कुरान--यह गी ता--यह पवित्र ग्रंथ हैं। इनमें सत्य भरा हुआ है। यह बचपन से दोहराया जा रहा है, दोहराया जा रहा है, दोहराया जा रहा है। इतने बचपन से दोहराया जा रहा है, जब कि सवाल उठ ही नहीं सकता था। इतने बचपन से यह बात दोहराई जा र ही है कि प्रश्न उठाने की क्षमता भी न थी। इसीलिए सभी धार्मिक लोग छोटे-छोटे बच्चों को धार्मिक शिक्षा देने के लिए बड़े लालायित रहते हैं। क्योंकि जब प्रश्न उ ठने शुरू हो जाएंगे। अगर बीस साल के जवान से आप पहली बार कहे कि तुम हिं

दू हो तो वह पूछेगी, क्यों? क्या मतलब? क्यों हम हिंदू हैं? लेकिन दो साल के छोटे बच्चे के दिमाग में डाला जा रहा है कि तुम हिंदू हो। उसे कुछ पता नहीं, प्रश्न पूछने की कला उसे मालूम नहीं। संदेह अभी सजग नहीं। उसके दिमाग में भर गए हैं बचपन से। जब प्रश्न उठने शुरू होंगे उससे बहुत गहरे में, उससे बहुत अनकांशस में तुमने भर दिया वह सब। वह अब कभी प्रश्न नहीं कर सकेगा। और जिंदगी भर उसे मानता चला जाएगा।

हम सार लोग उसी तरह की प्रचारित बातों के बीच बड़े हुए हैं। हमारा मस्तिष्क कंडीशंड है। सब संस्कारित है। अब अगर सत्य की खोज पर किसी को निकलना है और प्रभु का मंदिर खोजना है तो उसे अपने एक-एक संस्कार पर प्रश्न उठाना पडेगा। एक-एक संस्कार को उखाड़कर पूछना पड़ेगा, ऐसा है? निश्चित ही बड़ी बेचैनी पैदा हो जाएगी, बहुत रेस्टलेसनेस पैदा हो जाएगी, बहुत अराजकता पैदा हो जाएगी। बहुत क्योंकि, भीतर सब गड़बड़ हो जाएगा—जो सुव्यवस्थित है। लेकिन इसके पहले कि कोई उस लंबी यात्रा पर निकले, जहां कि सब में सब सुव्यवस्थित हो जाएगा उसके पहले जो झूठी सुव्यवस्था बनायी गयी है वह टूट जाना जरूरी है। इस अराजकता से गुजरना ही पड़ेगा। एक-एक संस्कार को पूछना पड़ेगा कि क्या ऐसा है? क्या मैं हिंदू हूं? किस कारण हिंदू हूं? इस कारण कि किसी घर में पैदा हो गया? किसी के घर में पैदा होने से कोई हिंदू कैसे हो सकता है? कम्युनिस्ट के घर में पैदा होने से कोई बेटा कम्युनिस्ट होता है? कांग्रेसी के घर में पैदा होने सक कोई बेटा कांग्रेसी होता है? अगर यह नहीं होता है तो हिंदू के घर में पैदा होने से कोई हिंदू कैसे होगा? झेन के घर में पैदा होने से कोई झेन कैसे होगा? ये बीसों विचार धाराएं हैं विचारधाराओं का जन्म से क्या संबंध है? जन्म से तो कोई भी संबंध नहीं है। खून से क्या संबंध है? विचारधारा का खून से कोई संबंध नहीं है। विचारधारा का वीर्यअणुओं से क्या संबंध है? कोई भी संबंध नहीं है। आप किसी भी पिता से पैदा हों इससे आपका हिंदू या मुसलमान होने को कोई भी तो संबंध नहीं है। यह तो बिलकुल ही असंगत बात है जो भी आपके मस्तिष्क मग जोड़ी और घूसाई जा रही है। गीता के सही और गलत होने से आपके किसी घर में खास घर में पैदा होने का क्या संबंध है? महावीर के तीर्थंकर होने से आपको किसी मां-बाप से पैदा होने का क्या संबंध है? कोई भी तो संबंध नहीं है। लेकिन कभी इस पर प्रश्न नहीं उठाया। इस पर कभी प्रश्नवाचक नहीं लगाया। कभी संदेह नहीं किया। इसलिए दुनिया विभाजित है। और जिस दिन एक-एक आदमी प्रश्न खड़ा करेगा उसी दिन दुनिया अविभाजित हो जाएगी।

आज सारी दुनिया में युद्ध है। रूस भयभीत है अमरीका से। अमरीका भयभीत है रूस से। और बेटे पूछ ही नहीं रहे हैं कि इस भय की क्या जरूरत है? पाकिस्तान भयभीत है हिंदुस्तान से। हिंदुस्तान भयभीत है पाकिस्तान से। दोनों एक दूसरे से भयभीत होकर युद्ध की तैयारी किए चले जाते हैं। कोई भी नहीं पूछता कि भयभीत होने की क्या जरूरत है? रहने के लिए पृथ्वी पर एक दूसरे से भयभीत होने के ि

लए कौन सी आवश्यकता है। लेकिन प्रश्न ही कोई नहीं उठाएगा। भय स्वीकृत कर लिया जाएगा। झगड़े मान लिए जाएंगे और जारी रहेंगे।

जब तक समाज का मस्तिष्क, व्यक्ति का मस्तिष्क जीवन के एक-एक प्रश्न को वापस नहीं जगा लेता और आस्थाओं के सारे पर्दे नहीं उखाड़ देता तब तक--तब तक नए चित्त का जन्म नहीं होगा। और नया चित्त ही प्रभु के निकट पहुंच सकता है, पुराना चित्त नहीं। वह जो ओल्ड माइंड है--ओल्ड माइंड का, पुराने चित्त का मतलब बूढ़े का चित्त नहीं है--बूढ़ा चित्त--बूढ़े का चित्त नहीं। बूढ़े आदमी के भी जाता चित्त हो सकता है, अगर वह सोचता है, खोजता है, विचार करता है। अगर उसका चित्त क्लोज्ड नहीं हो गया है। बंद नहीं हो गया है, खुला है अगर उसके चित्त की दीवारें, द्वार-दरवाजे खुले हैं। सूरज की रोशनी आती है। नई, हवाएं आती हैं नई, बाहर की सुगंध आती है, नयी, अगर उसने अपने सारे चित्त को बंद कारागृह बना लिया तो एक बूढ़े आदमी के पास भी जवान चित्त होता है। और अगर एक जवान का चित्त भी बंद है तो उसके पास बूढ़ा चित्त होता है। हिंदुस्तान में, इस देश में तो जवान चित्त खोजना मुश्किल है। जवान आदमी के पास ही खोजना मुश्किल है तो बूढ़े आदमी के पास खोजने का तो कोई सवाल नहीं कर सकता। क्यों? क्योंकि परमात्मा सदा जवान है। परमात्मा के बूढ़े होने का खयाल सुना है कभी? परमात्मा सदा जवान है। परमात्मा सदा नया है। जीवन सदा नया है, अस्तित्व सदा जाता है, प्रतिपल जाता और नया है अस्तित्व। अगर हम चारों तरफ जगत को देखें तो सब नया है वहां। आदमी के मन को भर देखें तो वहां पुराना मिलेगा। जगत में भी कहीं पुराना नहीं मिलेगा। जो पत्ते कल थे वे आज नहीं रह गए हैं। जो सूरज कल निकला था वह आज नहीं निकला है। जो बदलियां कल घिरी थी, वह आज नहीं घिरी हैं। जो हवाएं कल बही थी, वे आज कहां है? जो गंगा में पानी कल था वह कहां पहुंच गया होगा? वह कहां होगा, अब वह किन किनारों पर होगा? कुछ भी वही नहीं है जो क्षण भर पहले था। सब तीव्रता से बदलता, भागा चला जा रहा है--सिर्फ आदमी के चित्त को छोड़कर। आदमी का चित्त क्यों नहीं बदलता तेजी से? इतनी ही तेजी से अगर आदमी का चित्त बदले, अगर जीवन की गति के साथ आदमी के चित्त का तारतम्य न हो तो जीवन अलग हो जाता है, आदमी अलग हो जाता है। आदमी अपने कैपसूल में बंद हो जाता है। और जिंदगी भागी चली जाती है। और तब इन दोनों का मिलन असंभव हो जाता है। जीवन से मिलना हो तो जीवन की तरह सतत प्रवाहशील होना जरूरी है। प्रश्न पूछने वाला चित्त प्रवाहित होता है। क्योंकि प्रश्न का मतलब ही यह है कि हम पुराने को तोड़ने का उपाय करते हैं, द्वार खोते हैं, नए की तरफ उत्सुकता जाहिर करते हैं। लेकिन हम प्रश्न ही नहीं--हम प्रश्न पूछते ही नहीं। हमें जैसे प्रश्न पूछना एक भय का कारण मालूम पड़ता है--पूछो ही मत। विचार जिसे करना है, उसे यह भय छोड़ देना पड़ेगा। उसे पूछना पड़ेगा। संदेह उठाना पड़ेगा। उस सब पर भी, उन सारे सत्यों पर भी जो कहने वालों को असंदिग्ध रहे हों, उन पर संदेह उठ

ाना पड़ेगा। क्योंकि तभी हम भी उस जगह पर पहुंचेंगे जहां असंदिग्ध सत्य का हम भी अनुभव कर सकें। संदेह के मार्ग से कोई असंदेह तक पहुंचता है। विश्वास के मार्ग से आदमी संदेह में ही जीता है और मर जाता है। विश्वास ऊपर होता है, भीतर संदेह होता है। संदेह को दबाए चले जाओ, विश्वास को थामे चले जाओ। पूछो किसी आदमी से जो कहता है कि ईश्वर है। खोलो थोड़ी उसकी छाती। उससे कहो कि थोड़ा भीतर खोजो--कहीं ऐसा तो नहीं है कि भीतर शक हो, संदेह है, कि नहीं है। वह आदमी कहेगा, नहीं, मेरा दृढ़ विश्वास है, और जितने जोर से वह कहे मेरा दृढ़ विश्वास है, जानना कि भीतर उतना ही गहरा संदेह है। उसी गहरे संदेह को दबाने के लिए विश्वास की जरूरत पड़ी नहीं तो दृढ़ विश्वास की जरूरत न थी।

विश्वास किस चीज की दवा है? विश्वास संदेह को दबाने की पद्धति है। संदेह को मिटाना है। दबाना नहीं। इसलिए संदेह को पूरा प्रकट होने दो, ताकि वह प्रकट हो और उड़ जाए। प्रकट हो, सत्य से टकराए, नष्ट हो जाए। इतना ध्यान रहे कि कोई संदेह सत्य को नष्ट नहीं कर सकता है। इसलिए संदेह से भयभीत होने की कोई भी जरूरत नहीं। संदेह टकराएगा सत्य से, सत्य बचेगा, संदेह खो जाएगा। लेकिन जो भयभीत हैं, वे शायद संदेह को सत्य से ज्यादा से ज्यादा बड़ा मानते हैं। सभी विश्वासी, सभी श्रद्धावान संदेह को सत्य से बड़ा मानते है, इसलिए वह कहते हैं, संदेह मत करो, विश्वास करो। संदेह क्या सत्य से बड़ा है, कि उससे सत्य मिट जाएगा। संदेह बच जाएगा। संदेह की क्या शक्ति है सत्य के समक्ष? लेकिन हां, संदेह विश्वास से बड़ा है। इसलिए विश्वास घबड़ाता है। संदेह उठेगा, विश्वास टूट जाएगा। लेकिन विश्वास की तो दो कौड़ी कीमत नहीं है। असली सवाल तो सत्य का है जिसके समक्ष सत्य गिर जाता है, टूट जाता है, नष्ट हो जाता है। खो जाता है। सत्य के समक्ष संदेह वैसे ही मिट जाता है जैसे दिए के समक्ष अंधकार मिट जाता है। दिया जला और अंधकार विलीन। लेकिन दिया मत जलाओ, द्वार दरवाजे बंद कर अंधेरे को छिपा लो। उससे अंधेरा मिटेगा नहीं। उससे अंधेरा और सघन होगा। द्वार दरवाजों से थोड़ी बहुत रोशनी आती थी वह भी नहीं जाएगी। अंधेरा गहन होगा। सब दरवाजे बंद कर लो। दरवाजे पर पहरा लगाकर बैठ जाओ तो भीतर अंधेरा और गहन होगा।

विश्वासी आदमी के भीतर संदेह बहुत गहन होता है संदेह को मिटाना हो, द्वार दरवाजे खोलो--पूछो, डरो मत। विचार की पहली सीढ़ी है संदेह। दूसरी सीढ़ी है तर्क, दूसरी सीढ़ी है तर्कना, दूसरी सीढ़ी है रीजनिंग। सिर्फ पूछो ही मत--ऐसा भी हो सकता है कि पूछते सिर्फ इसलिए हो कि कोई बंधा हुआ उत्तर है, वही दे देने का इंतजाम है। पूछ लेते हो, फिर बंधा हुआ उत्तर दे देते हो। एक आदमी पूछता है, मैं कौन हूं? फिर बंधा हुआ उत्तर है, कहता है, मैं? मैं ब्रह्म स्वरूप, सत-चित्त-आनंद। मैं आत्मा हूं। यह उत्तर किताब से सीखा हुआ तैयार है। उसी किताब में उसने यह भी पढ़ा है कि पूछो मैं कौन हूं? उसी किताब में यह भी पढ़ा है कि

उत्तर हो कि मैं ब्रह्म हूं। यह बेमानी है, यह पूछना किसी अर्थ का नहीं है। पूछो त ो, तर्क करो, तो पूछने की कोई सार्थकता होती है। तोड़ो, बंधे हुए उत्तर मत दो। अगर बंधे हुए उत्तर देने हैं तो पूछना बेमानी हो गया। प्रश्न बनाया और पहुंच भ ी लिया, वह श्रम व्यर्थ गया। प्रश्न पूछना है तो उत्तर आने दो। सीखा हुआ उत्तर नहीं चाहिए। और जो उत्तर आए तर्क की कसौटी पर कसो। देखा कि वह ठीक म ालूम पड़ता हैं कि नहीं।

एक फकीर एक संध्या अपने घर आया। किसी ने रास्ते में भिक्षा में उसे कुछ मांस दे दिया है। वह मांस घर लाकर उसने रखा। पत्नी से कहा, तैयार कर, मैं दस-पांच मित्रों को निमंत्रण दे आता हूं। पत्नी परेशान है। उसने सोचा, छिपा दो मांस को। दस-पांच मित्रों की परेशानी में मत पड़ो। पति लौटकर आया। उसने कहा, क्यों बैठी है तू? चूल्हा नहीं जला? उसने कहा, वह तुम्हारी जो बिल्ली है, मांस खा गयी। उसके पति ने कहा, ऐसा क्या? उसने कहा, हां। वह बिल्ली को पकड़ लाया, पड़ोस से एक तराजू ले आया। तीन पौंड मांस था बिल्ली को तराजू पर र खा। बिल्ली तीन पौंड निकली। फकीर ने कहा इज इन दिस दि मिट, व्हेयर हज द ी कैट? अगर यह मांस है तो बिल्ली कहां है? मान नहीं लिया कि बिल्ली खा गय ी, तीन पौंड मांस बिल्ली खा जाएगी तो बिल्ली का वजन तो बढ़ जाएगा। संयोग की बात, बिल्ली का खुद वजन तीन पौंड है। उस फकीर ने कहा, तू ठीक कहती है कि बिल्ली मांस खा गयी। यह तो मांस हो गया। बिल्ली कहां है? या अगर यह बिल्ली है तो कृपा कर द्वार दरवाजे खोल, मांस कहां है—बाहर निकाल।

तौलने का अर्थ है तर्क। तर्क का अर्थ है जो कहा जा रहा है उसे तोलो। उसे पहच ानो। कहा जा रहा है, मंदिर की मूर्ति सबकी रक्षा करती है। जरा मंदिर की मूर्ति के धक्का देकर देखो, अपनी भी रक्षा कर पाती है कि नहीं कर पाती है! तो प ता चलेगा, अपनी भी रक्षा कर पाती है या नहीं कर पाती है। तो फिर सबकी र क्षा भी कर सकेगी। सोमनाथ के मंदिर पर हमला हुआ, तो पंडितों ने, पुजारियों ने क्या किया? आस-पास के राजपूतों ने खबर भेजी कि हम आएं रक्षा को? तो पुजारियों ने क्या उत्तर दिया? पुजारियों ने कहा कि जो सबका रक्षक है उसकी र क्षा तुम करोगे? नास्तिक हो? अधार्मिक कहो? जो सबकी रक्षा करने वाला है, उ सकी रक्षा तुम करोगे? रह गए बिचारे चुप। क्या जवाब देते? तर्क की तो क्षमता नहीं है। तर्क की क्षमता होती तो हारता यह मुल्क—ऐसी हार छोटी-छोटी बातों में? चुप रह गए कि ठीक है, जब पुजारी कहते हैं तो ठीक कहते हैं। और जब दु श्मन गजनी ने हमला किया कि पांच सौ पुजारी प्रार्थना कर रहे हैं भगवान से कि हमारी रक्षा करो, और वह गजनी घुस गया उनकी प्रार्थना के बीच। उसने गदा मारी और वे भगवान, जिनके सामने पांच सौ लोग प्रार्थना करते थे, और अरबों लोगों ने प्रार्थना की होगी, वे भगवान चारों खाने चित्त हो गए, चार टुकड़े हो गए ।

लेकिन इतनी सी बात की जांच तो राजपूत भी आकर कर सकते थे। वे भी एक धक्का देकर देख सकते थे कि मूर्ति रक्षा है। नहीं, पर विचारणा नहीं है। नहीं, पर सोचना नहीं है, तोलना नहीं है। जो वह दिया उसे चुपचाप मान लेंगे। उसे अंधे की तरह मान लो। तर्क का अर्थ है, तोलो। उसके दोनों पहलू तोलो। जो दावा कि या जा रहा है उसकी परीक्षा करो कि दावा ठीक या नहीं। उसके विपरीत विकल्प खोजो और देखो कि क्या ठीक है? पच्चीस विकल्प हो सकते हैं, कौन ठीक है, इसकी बुद्धिगत कसौटी करो। लेकिन अबुद्धि पूर्वक स्वीकार चल रहा है। लेकिन क ौन करे? और धार्मिक, तथाकथित धार्मिक समझाते हैं, तर्क मत करना। तर्क कर ना ही मत। तर्क आदमी को नास्तिक बना देता है, और मैं आपसे कहता हूं कि ज ो तर्क करके नास्तिक बनता है, अगर तर्क करता ही चला जाए तो बहुत देर तक , नास्तिकता नहीं टिकेगी। नास्तिकता भी खो जाएंगी। अधूरे तर्क पर कोई रुक जा ए तो नास्तिक रह जाता है। अगर पूरे तर्क पर कोई चला जाए तो तर्क को भी प ार कर जाता है। और जो कभी नास्तिक नहीं हुआ वह कभी ठीक से आस्तिक नह ीं हो सकता है। आस्तिक होने के लिए नास्तिकता से गुजर जाना जरूरी है। नास्ति कता का कुल मतलब इतना है कि हम तर्क करते हैं, सोचते हैं, विचार करते हैं। जो आदमी नास्तिकता से नहीं गुजरा उसे आदमी ने न कभी सोचा, न कभी खो जा, वह आदमी डरा हुआ है और भय के कारण उसने भगवान को पकड़ रखा है। भगवान उसकी विचारगत निष्पत्ति नहीं बनी, भगवान उसकी खोज का अंतिम नि ष्कर्ष नहीं बना, निष्पत्ति नहीं बनी, पकड़ लिया है।

दूसरा सूत्र है तर्क—सब तरफ से सोचो, खोजो, पूछो। सारे विकल्प देखो, जल्दी से कोई एक विकल्प मत पकड़ लो। जल्दी से कोई पक्ष मत बना लो। निष्पक्ष भाव से खोजो, कौन क्या कहता है? इस मुल्क में चार्वाक ने कुछ तर्क दिए हैं, लेकिन क ोई नहीं सुनने जाएगा। लेकिन जो चार्वाक को नहीं सुनता है वह कभी भी ठीक अ र्थों में प्रभु के द्वार में प्रविष्ट नहीं हो सकता। चार्वाक को सुनकर जो खोजने लगत ा है वह शायद प्रवेश पा भी जाए, लेकिन चार्वाक की तरफ कानों में अंगुलियां डा लकर भी निकल जाता है वह बहरा आदमी है, वह अभी आगे नहीं जा सकता है। इतना भय क्या है? चार्वाक की एक किताब नहीं बची—तर्कपूर्ण थी। आग लगा द ी होगी। चार्वाक के संबंध में जो शब्द मिलते हैं वे उनके विरोधियों की किताबों में लिखे हुए हैं, और कुछ सूत्र नहीं मिलते। आश्चर्यजनक है। हमने जैसे तर्क को ज. ड से काटने की कोशिश की है। कहीं भी तर्क हो, विचार हो, उसे खत्म करो औ र अविचार को, विश्वास को दृढ़ करो, मजबूत करो। इसी कारण इस देश में विज्ञ ान का जन्म नहीं हो सका। विज्ञान वहां पैदा होता है जहां तर्क है। विज्ञान तर्क क ी फल सृति है। विज्ञान यहां पैदा नहीं हुआ क्योंकि तर्क ही हमने कभी हनीं किया। और आज भी हम तर्क नहीं कर रहे हैं तो विज्ञान इस देश में पैदा नहीं होगा। और जो देश विज्ञान ही पैदा नहीं कर सकता, वह देश धर्म कैसे पैदा करेगा? वि ज्ञान है पदार्थ का सत्य, और अगर हम पदार्थ का भी सत्य जानने में असमर्थ है

तो परमात्मा का सत्य कैसे जान सकेंगे? वह तो बहुत ऊंची बात है। वह तो बहु त गहरी बात है। पदार्थ तो बहुत बाहरी बात है, पदार्थ तो बहुत स्थूल है। तो पद ार्थ वह है जो दिखायी पड़ता है। परमात्मा वह है जो दिखायी नहीं पड़ता है। जिन की पकड़ कभी दिखायी पड़ने वाले पर भी नहीं बैठ पाती, वे अदृश्य को पकड़ लें गे, यह मात्र कल्पना हो जाती है।

विज्ञान से गुजरना भी जरूरी है, नास्तिकता से गुजरना भी जरूरी है, तर्क से गुजर ना भी जरूरी है। और इससे जो गुजरता है उसको एक प्रौढ़ता, एक मेच्योरिटी, उ सके मस्तिष्क को एक बल मिलता है। उसके पैर किसी ठोस बुनियाद पर खड़े होने लगते हैं। फिर अगर वह किसी दिन ईश्वर के द्वार पर खटखटा देता है और द्वार में प्रविष्ट हो जाता है तो उसके पीछे एक आधारशिला होती है। और फिर वापस नहीं लौटाया जा सकता। लेकिन जो तर्क से नहीं गुजरा और ईश्वर के पास पहुं च गया कल्पना, में उसे तत्क्षण वापस लौटाया जा सकता है। उसके पीछे कोई आ धार नहीं, कोई बुनियाद नहीं। उसके मकान की कोई नींव नहीं, उसने मकान बना लिया है। बिना नींव का वह मकान है।

यह एक दूसरी बात कहना चाहता हूं—एक-एक बात पर तर्कना की जरूरत है। त र्क से जो हीन है, तर्क से जो नीचे है वह स्वीकार के योग्य नहीं है। उसे स्वीकृति नहीं दी जानी चाहिए। सोचा ही जाना चाहिए। विश्वास सिखाता है समर्पण। विचा र सिखाता है संघर्षण। विश्वास कहता है, सब छोड़कर मेरी शरण में आ जाओ—स ब छोड़ो, तुम सोचो मत, शरण में आ जाओ। विश्वास सिखाता है किसी की शरण में आ जाओ। तर्क सिखाता है—अशरण हो जाओ। किसी की शरण मत जाना। खु द सोचना, खुद विचार करना—संघर्ष। संघर्षण करना विचार से—यह ठीक है, वह ठीक है। यह ठीक नहीं है, वह ठीक नहीं है। खोजना—खोजना। जरूरी नहीं है कि खोज से आज ही सत्य मिल जाएगा। लेकिन खोजने से, भीतर जो खोजने वाली चे तना है वह ज्यादा प्रगाढ़ ज्यादा मजबूत, ज्यादा प्रौढ़ हो जाएगी। वही असली सवा ल है। वही महत्वपूर्ण सवाल है।

तीसरी सीढ़ी है चिंतन। तर्क है रीजनिंग, चिंतन है कंटेप्टलेशन। सारा तर्क कर डा लो, सार तर्क देख डालो। आस्तिक को सुनो, नास्तिक को सुनो, ईश्वर के पक्षपाती को सुनो; विपक्षी को सुनो, जो भी चारों तरफ तर्क दिए गए हैं जीवन के सत्य के लिए, द्वार खुला छोड़ दो। सब को भीतर आने दो। लेकिन फिर स्वयं सोचो। नि र्णायक बनो। चिंतन का अर्थ है, फिर सोचो, कौन ठीक है, कौन मेरी बुद्धि की क सौटी पर ठीक है, फिर सोचो, कौन ठीक है, कौन मेरी बुद्धि की कसौटी पर ठीक है, इसके चिंतन में उतरो। और एक-एक चीज के सारे पहलुओं को खोजो। जल्द ी नहीं है। घबड़ाहट नहीं है, जल्दी पकड़ लेने का का आग्रह नहीं है। एक-एक ची ज को उल्टाओ, उसके चारों तरफ से देखो। आस्तिक कहता है, दुनिया है तो जरू र किसी ने बनायी होगी। उस बनाने वाले का नाम भगवान है। बिना बनाए दुनिया कैसे बन सकती है? सुनो उसकी तो। खोजो इस बात को कि यह ठीक तो कहत

ा है। बिना बनाए दुनिया कैसे बन सकती है। नास्तिक की बात भी सुनो, वह कह
ता है, अगर दुनिया बनाए बिना नहीं बन सकती तो मैं यह पूछता हूं कि भगवान
को किसने बनाया है? सुनो उसकी बात। वह भी तो अर्थपूर्ण बात कहता है। वह
कहता है, अगर दुनिया बिना बनाने वाले के नहीं बन सकती तो भगवान को भी
तो किसी ने बनाया होगा। फिर भगवान को किसने बनाया है? और अगर कहो ि
क बनाया किसी ने है तो पूछता है, उसको किसने बनाया है? और तब पता चल
ता है कि यह तर्क ईश्वर के लिए बेमानी है। इससे ईश्वर न सिद्ध होता है, न अि
सद्ध होता है क्या, कि ये दोनों व्यर्थ हो जाते हैं। अगर कोई व्यक्ति ठीक से चिंत
न करेगा तो वह पाएगा कि जीवन के परम सत्य के संबंध में कोई भी तर्क कुछ
नहीं सिद्ध कर पाता। तर्क दलील देता है, एक बात कहता है। लेकिन ठीक विपरी
त तर्क दूसरी दलील देता है, दूसरी बात कहता है। अगर दूसरे तर्क को सुना है ह
ी नहीं तो एक तर्क को तुम पकड़ लोगे। लेकिन यह चिंतन न हुआ। तुम आस्तिक
हो जाओगे। नास्तिक हो जाओगे। यह चिंतन न हुआ। चिंतन का अर्थ है—एक-ए
क तर्क को निष्पक्ष रूप से खोजो। खोजकर पता चलेगा कि कोई भी तर्क सत्य को
सिद्ध नहीं कर पाता। कोई भी तर्क सिद्ध नहीं कर पाता। एक तर्क जो सिद्ध कर
ता है, दूसरा उसे असिद्ध कर जाता है। और तब एक बहुत बड़ी प्रौढ़ता उपलब्ध
होगी कि तर्क भी बुद्धि का एक खेल है। विश्वास बुद्धि के नीचे हैं। तर्क बुद्धि के
भीतर है। लेकिन तर्क भी एक खेल है, और जिस दिन यह अनुभव होता है, तर्क
करने वाले विचारशील मस्तिष्क को जब यह पता चलता है कि तर्क भी एक खेल
है, तो तर्क से ऊपर उठने की संभावना का द्वार खुल जाता है।

मैंने सुना है, एक आदमी ने अमरीका के एक बड़े नगर में यह खबर की कि मैं ए
क ऐसा घोड़ा लाया हूं, जैसा घोड़ा पृथ्वी पर कभी नहीं हुआ। उस घोड़े का मुंह व
हां है जहां पूंछ होनी चाहिए और पूंछ वहां है जहां मुंह होना चाहिए। जिन्हें देखना
हो वह फलां-फलां थियेटर में सांझ पहुंच जाए, इतने-इतने रुपए का टिकट होगा।
सारा गांव टूट पड़ा। अगर आप भी रहे होंगे उस गांव में तो आप भी जरूर गए
होंगे। ऐसे घोड़े को देखने से कौन बच सकता है? लोग चिल्लाने लगे, भीड़ भारी
है, सारा हाल भरा है। हाल के बाहर लोग भरे हैं। लोग चिल्ला रहे हैं कि जल्दी
घोड़ा निकालो। वह आदमी कहता है कि साधारण घोड़ा नहीं है, थोड़ा धैर्य रखिए।
घोड़ा आते ही आएगा। फिर धीरे-धीरे इंच-इंच जगह भर गई, श्वास लेना मुश्कि
ल है, और फिर उस आदमी ने पर्दा हटाया। और एक साधारण घोड़ा खड़ा है। लो
गों ने गौर से देखा, एक क्षण तो सकते में आ गए, सांस रुक गई। यही घोड़ा है?
फिर लोग चिल्लाए, धोखा दे रहे हो। मजाक कर रहे हो? यह तो साधारण घोड़
ा है। उस आदमी ने कहा, जरा गौर से देखो, मेरे तर्क को देखो। फिर लोगों ने ग
ौर से देखा, कुछ खास बात नहीं दिखी दी, सिर्फ एक मामला दिखायी पड़ता है,
घोड़ा साधारण है। सिर्फ जो तोबरा मुंह में बांधा जाता है वह तोबरा उसकी पूंछ
में बंधा हुआ है। उस आदमी ने कहा, देखो गौर से, इस घोड़े का मुंह वहां है जहां

पूंछ होनी चाहिए। और पूंछ वहां है, तोबरे मैं जहां मुंह होना चाहिए। यह घोड़ा बहुत विशेष है। और लोगों से कहां—तर्क समझ गए मेरा? अबबिना शोर-गुल किए चुपचाप वापस घर चले जाओ। जो मैंने कहा था वह वायदा कर दिया।

तर्क तो ठीक है, लेकिन खिलवाड़ हो गया। सब तर्क खिलवाड़ है। यह भी तर्क के पहले पता नहीं चल सकता, यह तभी तर्क से गुजर कर ही पता चलता है। लेकिन कोई कहेगा, जब तर्क चिंतन से पता चलता है कि बेमानी है, तो हम तर्क ही क्या करें? पहले ही क्यों न रुक जाएं।

मैंने सुना, एक स्टेशन पर बड़ा झगड़ा मचा हुआ है। कुछ लोग तीर्थ यात्रा को जा रहे हैं, हरिद्वार जा रहे हैं। और स्टेशन पर शोर-गुल है। सारे लोग गाड़ी में बैठ रहे हैं। सब चिल्ला रहे हैं, सामान रखो, जल्दी रखो, कोई पीछे न छूट जाए, लड़का न छूट जाए, पत्नी न छूट जाए। गाड़ी छूटने को है। सीटी बजने लगी, घंटी हो गयी, झंडी फहरने लगी। लेकिन एक आदमी के पास बड़ी भीड़ है: आठ-दस आदमी उसे पकड़ कर खींच रहे हैं, और वह आदमी यह कहता है, पहले मुझे बताओ, इस गाड़ी में चढूंगा तभी जब तुम यह वायदा कर दो कि फिर इसमें से उतरना तो नहीं पड़ेगा। अगर उतरना ही हो तो चढ़ने की क्या जरूरत? हम चढ़े क्यों, अगर उतरना हो। अगर उतरना ही है तो हम बिना चढ़े ही बेहतर। वे लोग कह रहे है, गाड़ी छुट जाएगी। रास्ते में तुम्हें समझाएंगे। उतरना तो पड़ेगा, लेकिन चढ़ना जरूरी है। लेकिन आदमी नहीं मानता है। वह कहता है, जब चढ़ना है और फिर उतरना है तो चढ़े क्यों? उसका तर्क ठीक है। लेकिन मित्र लोग जबरदस्ती उसे भीतर चढ़ा देते हैं। फिर हरिद्वार आ गया। अब सारे लोग उतर रहे हैं। फिर भी झंझट शुरू हो गई। मित्र कह रहे हैं, नीचे उतरो। वह आदमी कहता है हम चढ़ कर उतरने वालों में से नहीं हैं। हम सिद्धांत के बड़े पक्के हैं। हम चढ़ गए तो चढ गए। हम ऐसे नहीं है कि कल कुछ, आज कुछ। हम पक्के आदमी हैं। हम चढ़ गए तो चढ़ गए, अब हम उतरेंगे नहीं। हमने पहले ही कहा था कि अगर उतरना हो तो चढ़ेंगे नहीं। मित्र जबरदस्ती नीचे उतार रहे हैं, लेकिन वह आदमी कहता है, यह बिलकुल ठीक नहीं है कि जोर-जबरदस्ती कर रहे हो। अगर उतारना था तो चढ़ाया क्यों था? वह आदमी ठीक कहता है। थोड़ी भूल करता है। जहां चढ़ा था वह वह हरिद्वार नहीं था—जहां उतर रहा है वह हरिद्वार है।

विश्वास करने वाला आदमी भी कहता है कि एक समय जाकर तर्क व्यर्थ हो जाते है। तो फिर हम तर्क करें ही क्यों? लेकिन विश्वास हरिद्वार नहीं है। विश्वास तर्क से पहले की अवस्था है। और जो विश्वास पर रुक जाता है और तर्क से नहीं गुजरता वह तर्कातीत, बियांड दी रीजनिंग कभी नहीं पहुंच पाता। तर्कातीत अवस्था उसे कभी नहीं उपलब्ध होती। वह तर्क के पहले ही रह जाता है। तर्क के बाद की अवस्था उसे कभी नहीं उपलब्ध होती। सत्य तर्कातीत है। सत्य तर्क से नहीं मिल सकता—सत्य तर्कातीत है। ट्रासेडेंटल है। तर्क से भी आगे है। लेकिन जो तर्क करता है, वही आगे जा पाता है। विश्वासी कहता है, तर्क से भी तो नहीं मिलता,

हम पहले ही रुक जाते है, वह कहता है, हम तर्क में भी नहीं जाएंगे। हम तर्क के पहले रुक जाते हैं। वह तर्कहीन है, तर्कतीत नहीं। लेकिन जो तर्क से गुजरना है, उस प्रौढ़ता से गुजरता है, तब खोजता है, सारे तर्कों की एक-एक बारी बात सुनता है। और आखिर में चिंतन करता है तो चिंतन से कंटेम्पटलेशन से यह पता चलता है। कि विश्वास तो पहुंचाता नहीं। तर्क पहुंचाता है—लेकिन द्वार पर ही रो क लेता है, भीतर नहीं जाने देता। विश्वास तो झूठे द्वार पर खड़ा कर देता है। त र्क ठीक द्वार पर खड़ा करता है। लेकिन द्वार पर ही खड़ा करता है, भीतर प्रवेश नहीं करने देता। तर्क के बाद है—चिंतन, वह भी विचार की तीसरी पीढ़ी है। चिंत न का मतलब है, सारे तर्कों का निष्पक्ष आदोलन, सारे तर्कों की निष्पक्ष समीक्षा। देखना है—क्या है ठीक, क्या है अठीक। और जब तर्क को कोई बहुत गोर से देख ता है तो पाता है कि तर्क जिस सिद्ध करता है, उसे असिद्ध भी कर देता है। उसे ही असिद्ध कर देता है जिसे सिद्ध करता है। तर्क दोनों पहलुओं को सिद्ध कर दे ता है, दोनों को असिद्ध कर देता है। और तब तर्क एक खेल रह जाता है, एक जाल रह जाता है, एक पहेली रह जाती है। जिसे पहेली का अपना सुख है, लेकिन पहले के बाहर जाने का वहां कोई मार्ग नहीं है। लेकिन जो इस पूरी पहेली की जीएगा वह बाहर हो जाता है।

एक गांव में एक सम्राट ने तय किया कि मैं अपने गांव में असत्य नहीं चलने दूंगा । और जो असत्य बोलेगा उसको फांसी लगा दूंगा। गांव के एक वृद्ध संन्यासी को बुलाकर उसने पूछा कि तुम्हारी क्या आज्ञा है—मैंने तय किया है कि असत्य नहीं चलने दूंगा, आशीर्वाद दो। उस संन्यासी ने पूछा, करोगे क्या? तरकीब क्या है अस त्य न चलने देने की? उसने कहा, मैं एक आदमी को रोज फांसी पर लटकाऊंगा जो असत्य बोलेगा। उस संन्यासी ने कहा, आश्चर्य! क्योंकि अभी तक यही तय नह ीं हो सका है कि सत्य क्या है और असत्य क्या है? निर्णय का रास्ता क्या है? उ स आदमी ने कहा, तर्क करेंगे, विचार करेंगे। उसने कहा, बहुत अच्छा है। लेकिन तर्क और विचार से निर्णय होगा। तर्क और विचार से विश्वास के जो निर्णय थे वे खंडित हो जाएंगे। तर्क और विचार निषेधात्मक प्रक्रिया है, निगेटिव है। वह उखा ड दोगे विश्वास को। लेकिन पाजेटिव कुछ देगा, विधायक कुछ मिलेगा? पता चले गा, क्या है सत्य, क्या है असत्य? उस राजा ने कहा, हमने इसीलिए आपको पूछ ने के लिए बुलाया है। आप हमें बताएं, हम वैसा करें। उस फकीर ने कहा, फांसी कहां लगाओगे? राजा ने कहा, गांव का जो नगर द्वार है, कल सुबह नए वर्ष के शुरू दिन में एक आदमी को हम वहां लटकाएंगे जो झूठ बोलते पकड़ा जाएगा। उ स फकीर ने कहा, फिर मैं कल सुबह नगर द्वार पर मिलूंगा। कल सुबह आप वहीं मिल जाए और अपने तर्कशास्त्रियों को लेकर वहां आ जाएं, जो निर्णय कर सकें कि सत्य क्या है, असत्य क्या है। दूसरे दिन द्वार खुला, फकीर अपने घोड़े पर सव ार भीतर प्रविष्ट हुआ। राजा ने पूछा, घोड़े पर सवार आप कहां जा रहे हैं? उस फकीर ने कहा, मैं फांसी पर चढ़ने जा रहा हूं। राजा ने कहा, क्यों झूठ बोलते हैं?

आपको, और कौन फांसी पर चढ़ाएगा? उस फकीर ने कहा, अगर झूठ बोलता हूं तो फांसी पर चढ़ा दो, लेकिन तब जो मैंने बोला वह सत्य हो जाएगा। और अगर मुझे फांसी पर नहीं चढ़ाते तो झूठ बोलने वाले को बिना फांसी पर चढ़े, जाने दिया है। अब तुम निर्णय कर लो। ये तुम्हारे सब विचार करने वाले निर्णय कर लें। मुझे फांसी देनी है कि नहीं देनी है? वह राजा और उसके पंडित बहुत मुश्किल में पड़ गए। उन्होंने कहा,अगर हम इसे जाने देते हैं तो यह आदमी झूठ बोल रहा है कि मैं फांसी पर चढ़ने जा रहा हूं। और अगर नहीं जाने देते, और फांसी पर लटकाते हैं तो यह सत्य हो जाता है, और हमारा फांसी देना सत्य के लिए फांसी हो जाती है। अब हम क्या करे? उस फकीर ने कहा, जब तुम निर्णय कर लो तो मुझे खबर कर देना, मैं फांसी पर चढ़ने आ जाऊंगा। वह अपना घोड़ा बढ़ाकर चला गया। फिर वर्षों बीत गए, उस फकीर को कोई खबर नहीं आयी। बार-बार उसने खबर भेजी राजा को कि निर्णय हुआ हो तो बोलो। उस राजा ने कहा, कुछ निर्णय नहीं होता। हम तर्क कर-करके हार गए। अब हम आपसे ही पूछते हैं कि हम सत्य को कैसे जानें? तो उस फकीर ने कहा, तर्क करो, और जब हार जाओ तो तर्क के ऊपर उठो। लेकिन हारे बिना कोई ऊपर नहीं उठ सकता है।

तर्क का एक ही उपयोग है—विचार का एक ही उपयोग है—मनन का एक ही उपयोग है कि अंतिम चरण में मनन, विचार, तर्क अपने को ही व्यर्थ कर जाते हैं। विचार अंततः वहां पहुंचाता है जहां विचार कहता है—निर्विचार हो जाओ तो द्वार खुल सकता है। विचार से तो एक चक्कर पैदा होता है, खुलता नहीं है। विश्वास एक कांटा है जो लगा हो पैर में। और किसी आदमी को कांटा लगा हो और हम उससे कहे कि दूसरा कांटा ले आए तुम्हारे कांटे को निकालने को? वह आदमी चिल्लाए और कहे कि पागल हुए हो, एक ही कांटा मुझे काफी तकलीफ दे रहा है और तुम दूसरा कांटा लाना चाहते हो? हम उससे कहें, हम उस कांटे को इस कांटे को निकालने को लाते हैं। कांटा ले आए, उसका पहला कांटा निकालकर फेंक दें, और वह आदमी दूसरे कांटे को पहले कांटे के घाव में सम्हालकर वापस रखने लगे और कहे, इसने बड़ी कृपा की है। इसे हम सम्हालकर इसी छेद में रख लेते हैं। हम उससे कहें तू पागल है, फिर तो बात वही हो गयी।

मैं विश्वास का विरोधी हूं विचार के पक्ष में। विचार के कांटे से बस विश्वास की जड़े उखाड़कर फेंक देनी चाहिए। फेंक देने बिना कोई रास्ता नहीं है। लेकिन इससे यह मत समझ लेना कि मैं यह कह रहा हूं कि फिर विश्वास की जगह विचार को रख लेना। जैसे ही वह कांटा व्यर्थ हुआ, विचार भी व्यर्थ हो जाता है। और विचार व्यर्थ होता है तभी, जब हम विचार से गुजरते हैं। विचार करते हैं। खोजते हैं और आखिर में पाते हैं कि विचार करने से धारणाएं मिलती हैं, कंसेप्ट्स मिलते हैं। ट्रुथ नहीं मिलता—सत्य नहीं मिलता है। कितना ही विचार करें हमें कुछ धारणा मिल सकती है, कि ऐसा होगा सत्य, लेकिन ऐसा है सत्य, यह नहीं मिलता। विचार करने से, सोचने से पता चलता है कि शायद ऐसा होगा। परहेप्स—विचार कभ

ी भी परहेप्स के ऊपर नहीं ले जाता। वह कहता है, शायद ऐसा होगा। इसीलिए ि वज्ञान परहेप्स के ऊपर, नहीं उठता। विज्ञान कहता है कि शायद ऐसा है। कल बद ल सकता है, परसों बदल सकता है। फिर आगे बदलता रहेगा। न्यूटन कुछ और कहता है, आइंस्टीन कुछ और कहता है, आइंस्टीन के बेटे कुछ और कहेंगे, उनके बेटे कुछ और कहेंगे, और हमेशा परहेप्स लगा रहेगा। लगा रहेगा स्थात है। इतना हम कह सकते हैं कि अभी तक जो हम जानते हैं उससे ऐसा लगता है। कल-क ल हम और जानेंगे और अन्यथा लग सकता है। विचार स्यात के ऊपर, प्रोवेविलिट ी के ऊपर, परहेप्स के ऊपर, भावना के ऊपर नहीं ले जा सकता। विचार एक धा रणा देता है। कंसेप्ट—एक प्रत्येक कि ऐसा हो सकता है।

विचार की धारणा सत्य नहीं है। सत्य तो वहां है जहां सारी धारणाएं छूट जाती हैं। लेकिन विचार से गुजरना जरूरी है। मैं एक उदाहरण के लिए कहूं—एक आदम ी गरीब है, नंगा खड़ा है सड़क पर। फिर एक महावीर हैं। वह राजपुत्र हैं, उन्होंने सुंदरतम वस्त्र पहने हैं, वे सुंदरतम गद्दों पर सोए हैं। उन्होंने जीवन का सब सुख भोग पाया है। फिर वे भी सब छोड़कर रास्ते पर आकर नंगे खड़े हो गए हैं। ये दो नों आदमी नंगे खड़े हैं। अगर इनका एक फोटोग्राफ उतारा जाए तो फोटोग्राफ में काई फर्क नहीं मालूम पड़ेगा कि इन दोनों के नंगेपन में कोई फर्क है। लेकिन एक नंगा आदमी, जिसने कपड़े नहीं जाने, और ही तरह से नंगा है। और एक आदमी, जिसने सब सुंदरतम वस्त्र जाने, नंगा होकर खड़ा हो गया है, और ही तरह से नं गा है। एक का नंगापन गरीबी है। दरिद्रता है। एक का नंगापन मजबूरी है। दूसरे का नंगापन आनंद है। मुक्ति है। स्वेच्छा है। एक के नंगेपन में कपड़े पहनने की आ कांक्षा छिपी है। दूसरे के नंगेपन में कपड़ों को ऊपर चले जाने का द्वार खुल गया है। ये दोनों आदमी दो भांति नंगे हैं। महावीर की नग्नता का सौंदर्य ही और है। गरीब आदमी की नग्नता एक कुरूपता है, एक अग्लीनेस है। क्योंकि गरीब आदमी के भीतर वस्त्रों की चाह छिपी है। उस नग्नता के भीतर भांग है, वस्त्र मिल जा ए। वस्त्र नहीं मिल रहे हैं, यह पीड़ा है। महावीर वस्त्रों से ऊपर उठ गए हैं। वह भी नग्न खड़े हैं। वहां वस्त्रों की कोई मांग नहीं है। वहां मांग खत्म हो गई है। अ ब वह नग्नता अत्यंत निर्दोष है। अब उस नग्नता में अपने को छिपाने की, वस्त्रों की मांग की कोई कल्पना नहीं है।

एक आदमी विश्वास कर रहा है। वह गरीब आदमी की तरह नंगा है। एक आदमी विचार करके विचार के ऊपर चला गया है। वह महावीर की तरह नग्न है। इन दोनों में जमीन-आसमान का फर्क है। विश्वास करने वाला भी विचार नहीं करता। विचार से ऊपर उठ जाने वाला भी विचार छोड़ देता है। लेकिन विचार न करना एक बात है, और विचार छोड़ देना बिलकुल दूसरी बात है। ये दोनों भेद न दिख ाई पड़ने से विश्वास करने वाला सोचता है, हम भी वहीं है जहां निर्विचार वाला पहुंचाता है। वहां वह कभी नहीं हो सकता है। इस विचार की प्रक्रिया से गुजरना एक अनिवार्यता है। यह गुजरना एक अनिवार्य चरण है। इससे गुजरे बिना कोई क

भी निर्विचार को नहीं पहुंच सकता है। विचार दूसरी सीढ़ी है। विश्वास को तोड़ दें , खंड-खंड उखाड़ दें, जड़-जड़ फेंक दें विचार की धार से। और जब विश्वास फिंक जाए और विचार की पूरी तपश्चर्या से आप गुजर जाए और उस जगह पहुंच जाए की पूरी तपश्चर्या से आप गुजर गए और उस जगह पहुंच जाए जहां विचार चक्कर में घुमाने लगे, और कोई मार्ग न सूझे। धारणाएं हाथ में आ जाए। सिद्धांत हाथ में आ जाएं, लेकिन सत्य हाथ में न आए तब विचार ही रहेगा। अब मुझे छोड़ दो, अब मुझसे ऊपर चले जाओ, अब मैं किसी काम का नहीं हूं। विचार ही कहेगा कि अब मुझे छोड़ दो, अब मेरे ऊपर चल जाओ, अब मैं किसी काम का नहीं हूं। जो अंतिम दान है विचार का वह यह है कि वह कह जाता है कि मैं भी व्यर्थ हूं, मुझे भी पार करो।

उस तीसरी सीढ़ी में हम उस पर विचार करेंगे, निर्विचार पर, अर्थात ध्यान पर। पहली--विश्वास नहीं लिखा है उस द्वार पर। विश्वास नहीं। और मैंने कहा, विचार और जब विचार से गुजरेंगे तो पाएंगे कि लिखा नहीं है उस द्वार पर। विचार भी नहीं मिला है उस द्वार पर। परमात्मा के द्वार पर यह भी नहीं लिखा है कि विचार करो और भीतर आ जाओ। विचार करने द्वार के बाहर तक पहुंच जाओगे, भीतर नहीं जा सकते। तीसरी सीढ़ी में हम सोचेंगे, खोजेंगे कि ध्यान क्या है? मेडिटेशन क्या है, निर्विचार क्या है? क्या निर्विचार लिखा है उस द्वार पर? कल सुबह की चर्चा में निर्विचार पर, ध्यान पर सोचेंगे। और चौथी चर्चा में हम सोचेंगे कि क्या ध्यान को भी छोड़ देना पड़ेगा। क्या वह भी भीतर अंतगृह तक नहीं पहुंच सकता? वह भी नहीं पहुंचाता है। विश्वास छोड़ो विचार से। विचार छोड़ो विश्वास से। फिर निर्विचार भी छोड़ दो, तब जो शेष रह जाती हैं, समाधि की दशा। वह वहां पहुंचा देती है जहां परमात्मा का आवास है। आज की बात पर जो भी प्रश्न हों, संध्या उनके जवाब दूंगा।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना उससे अनुगृहीत हूं और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं।

मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

अहमदाबाद

९ जून १९६९ सुबह

३ तुलना रहितता है द्वार

बहुत से प्रश्न मित्रों ने पूछे हैं। एक मित्र ने पूछा है कि मेरे विचार एम. एन. राय के विचारों से नहीं मिलते हैं? एक दूसरे मित्र ने पूछा है कि मैं माओ के विचार से सहमत हूं। एक तीसरे मित्र ने पूछा है कि क्या कृष्णमूर्ति और मेरे विचारों के बीच कोई समानता है? और इसी तरह के कुछ और प्रश्न भी मित्रों ने पूछे हैं।

इस संबंध में कुछ बात समझ लेनी उपयोगी होगी। पहली बात तो यह कि मैं किसी से प्रभावित होने में या किसी भी प्रभावित करने में विश्वास नहीं करता हूं। प्रभावित होने और प्रभावित करने दोनों को, आध्यात्मिक रूप से बहुत खतरनाक, विष

ाक्त बीमारी मानता हूं। जो व्यक्ति प्रभावित करने की कोशिश करता है वह दूसरे की आत्मा को नुकसान पहुंचाता है। और जो व्यक्ति प्रभावित होता है। वह अपन ी ही आत्मा का हनन करता है। लेकिन इस जगत में बहुत लोगों ने सोचा है, बहु त लोगों ने खोजा है। अगर आप भी खोज करने निकलेंगे तो उस खोज के अंतही न रास्ते पर, उस विराट जंगल में जहां बहुत से पथ-पगडंडिया हैं बहुत बार बहुत से लोगों से थोड़ी देर के लिए मिलना हो जाएगा और फिर बिछुड़ना हो जाएगा। उस मिलने और बिछुड़ने का मूल्य अगर कोई है, अर्थ अगर कोई है, तो इतना ही है कि दो विचार कुछ देर के लिए समानांतर चलते हैं। मैं जैसा सोचता हूं, उ स देखने और सोचने में बहुत बार ऐसा हुआ है कि कभी थोड़ी देर के लिए महाव ीर साथ मालूम पड़े हैं, कभी थोड़ी देर के लिए उनके ठीक विरोधी सूत्र भी साथ मालूम पड़े हैं। कभी जीसस क्राइस्ट थोड़ी देर साथ मालूम पड़े हैं, कभी उनके ठीक विरोधी फेड्रिक नीत्शे भी साथ मालूम पड़े हैं। कभी कन्फ्यूसियश मिल गया है रास् ते पर, कभी उल्टा लाओत्से भी मिल गया है। कभी सुकरात भी, कभी जिनों भी, कभी प्लोटिनस भी, कभी रमण भी, कभी रामकृष्ण भी, कभी गांधी जी, कभी कृ ष्णमूर्ति जी, कभी एम. एन. राय भी।

मनुष्य के इस लंबे इतिहास में सारे विचार मनुष्य के आकाश में छूट गए हैं। और जब भी कोई सोचने चलेगा, बहुत बार कोई संगी-साथी होता हुआ मालूम पड़ेगा। फिर अलग होने की जगह हो जाती है। बहुतों के साथ मालूम पड़ता है साथ हैं। फिर थोड़ी देर बाद पता चलता है, साथ अलग हो गया है। सच तो यह है कि अ पने अतिरिक्त और किसी का साथ सदा नहीं है। तो विचार में बहुत बार किसी की निकटता मालूम पड़ेगी, लेकिन इससे न कोई किसी से प्रभावित होता है, न प्र भावित होने की जरूरत है। न कोई किसी का गुरु बनता है, न कोई किसी का शि ष्य। न बनना चाहिए, न बनना आवश्यक है, न हितकर है, न कल्याणप्रद है, न कोई किसी का गुरु बनाता है, न कोई किसी का शिष्य। न बनना चाहिए, न बनन ा आवश्यक है, न हितकर है, न कल्याणप्रद है।

मैं जब देखता हूं चारों तरफ, वहां जहां विचारों के आकाश में बहुत से विचारों के संघटन हैं, बहुत से विचारों के प्रतीक है, बहुत से विचारों के नारे हैं और जब कोई खुद खोजने जाता है, किसी तारे के करीब से गुजरता है, लेकिन उस तारे के करीब से गुजर जाने से वह उस तारे का नहीं हो जाता, न वह तारा उसका ह ो जाता है। ऐसे सब प्रश्न बहुत छोटी-छोटी बातों के ताल-मेल से बैठ जाते हैं। मा ओ का एक वाक्य कोई निकाल ले, और वाक्य निकाल ले कि वैचारिक क्रांति जूर ी है, और चूंकि मैंने भी कहा, वैचारिक क्रांति जरूरी है, फिर वह कहने लगे कि यह आदमी तो माओ से सहमत है। तो इस आदमी की बुद्धि को बहुत बचकाना कहा जाएगा। अगर मैं कहूं कि परमात्मा को खोजना जरूरी है तो वह कहे कि उ पनिषद के ऋषि भी कहते हैं कि परमात्मा को खोजना जरूरी है तो यह व्यक्ति उ पनिषद के ऋषियों से प्रभावित है। और अगर मैं कहूं कि मनुष्य को संदेह करना

जरूरी है, तो वह कहेगा, नीत्शे भी यही कहता है। अगर मैं कहूं, मनुष्य को अपन
ी वासनाओं से लड़ना नहीं, दमन नहीं करना, तो वह कहेगा, फ्रायड भी यही कह
ता है। ऐसे एक-एक शब्द, अगर एक-एक टुकड़े उठाकर खोजे जाए तो स्वाभाविक
है, बिलकुल ही स्वाभाविक है—बहुत तालमेल दिखाई पड़ेगा। लेकिन जब पूरे को,
टोटल को, पूरे विजन को, मेरी पूरी दृष्टि को आप देखने की कोशिश करेंगे तो
वह सिर्फ मेरी है। वह किसी की नहीं है। और सच तो यह है कि आपकी दृष्टि क
ो भी अगर खोजने की आप कोशिश करेंगे तो वह सिर्फ आपकी है और किसी की
भी नहीं। इस जगत में प्रत्येक व्यक्ति एकदम अनूठा है—मैं ही नहीं, आप भी। ए
क सामान्य से सामान्य व्यक्ति भी अनूठा है। बेजोड़ है। अद्वितीय है। यूनीक है। वह
वही है। और किसी जैसा नहीं है। वैसा व्यक्ति न कभी हुआ और न कभी होगा।
जैसा प्रेम आपने किया है वैसा प्रेम इस पृथ्वी पर न कभी किसी ने किया और न
कभी कोई कर सकेगा, क्योंकि आप पहली बार हैं। और इस जगत में कोई पुनरु
क्त नहीं है। प्रेम बहुत लोगों ने किया है। जैसा आप सोचते हैं वैसा बहुत लोग सो
चते हुए मालूम पड़ सकते हैं। लेकिन ठीक वैसा कोई भी नहीं सोचता। नहीं तो व
यक्ति खो जाएगा। सृष्टियां रह जाएगी। एक-एक व्यक्ति व्यक्ति है। एक-एक व्यकि
त की अपनी नियति है। इसलिए हम यह बहुत जल्दी क्यों करें। लेकिन हमारी जल
दी की आदत है। क्योंकि हम इस भाषा में सोचने के आदी रहे हैं कि कोई हो गुरु
, कोई हो शिष्य। कोई चले आगे कोई चले पीछे। कोई हो ऊपर, कोई हो नीचे।
कोई हो प्रभावित करने वाला, कोई हो तीर्थंकर, कोई हो अवतार कोई हो अनुया
यी। हम इस भाषा में सोचने के आदी रहे हैं। हम इस भाषा में सोचने के आदी न
हीं रहे कि कोई भी आदमी अपनी जगह अपने ही जैसा है—इनकंपरेबल। नहीं, कि
सी से उसकी तुलना नहीं हो सकती। छोटे से छोटे बड़े से बड़े, सब आदमी अपनी
जगह हैं। अपने जैसे हैं। कोई दूसरे से तुलनीय नहीं है। न तुलना आवश्यक है। तु
लना की बात ही भ्रांत है। खतरनाक है। और मनुष्यों को मनुष्य से नीचे, आगे, प
ीछे रखने की चेष्टा और आयोजन है। नहीं, किसी को किसी से प्रभावित होने की
जरूरत नहीं है। न किसी को गुरु बनाने की, न किसी को शिष्य बनने का, और न
किसी को शिष्य बनाने की। अहंकार बहुत रूप लेता है। एक ही बात ध्यान रखने
की जरूरत है, कि मैं खोजूं। जो भी मेरे पास उपकरण है, जो भी शक्ति है उस
को लगाऊं खेल में सत्य की, और जाऊं। इस यात्रा में उन रास्तों से गुजरना होगा
जिनसे दूसरे लोग भी गुजरे होंगे, दूसरे समय में, दूसरे काल में, दूसरे संदर्भ में,
दूसरे ढंग से। उन पद चिह्नों पर भी कभी पैर पड़ जाएंगे जिन पर कि नीचे पदचि
ह्न पड़े होंगे। लेकिन फिर भी अंततः पूरा का पुरा व्यक्ति आपका अपना हो। अपना
होना चाहिए। जो अपने व्यक्ति को खोता है, दूसरों के पीछे प्रभावित होता है, व
ह धीरे-धीरे आत्मघात करता है। लोग कहते हैं, फलां आदमी ने स्वीसाइड कर ि
लया, फलां आदमी ने आत्मघात कर लिया, वह सिर्फ शरीरघात है, आत्मघात न
हीं है। कोई आदमी छुरा मारकर मर जाता है, कोई आदमी जहर पी लेता है, को

ई आदमी बाहर से कूद जाता है। यह सिर्फ शरीरघात है। यह आत्मघात नहीं है। आत्मघात बिलकुल दूसरा है। जब कोई आदमी किसी की कंठी बांध लेता है, किस ी से कान फुंकवा लेता है, किसी के पीछे हो लेता है तो आत्मघात है, तो स्वीसाइ ड है। शरीर को मारने के खिलाफ कानून है और आत्मा को मारने के खिलाई को ई कानून नहीं है। जिस दिन अच्छी दुनिया बनेगी उस दिन आत्मा को मारने के ि खलाफ भी साफ-साफ विचार होना चाहिए। अनुयायी आत्मघाती है, और जो प्रभा वित होता है वह भी आत्मघाती है। जिस मात्रा में मैं किसी से प्रभावित होता हूं, उसी मात्रा में मैं मैं नहीं रह जाता हूं। उसी मात्रा मग कोई और ही छाया मेरे ऊ पर पड़ जाती है और मैं दब जाता हूं। जिस मात्रा में मैं किसी को स्वीकार कर ले ता हूं , उसी मात्रा में मैं नष्ट होता हूं। कोई और मेरे ऊपर हावी हो जाता है। अ ौर हम सारे लोग इस पागल की तरह दूसरों को स्वीकार करने के पीछे दीवाने हो ते हैं, जैसे हमें कोई चैन ही नहीं मिलता, जब तक कोई गांधीवादी न हो जाए, कोई मार्क्सवादी न हो जाए—जब तक कोई वादी न हो जाए, तब तक बेचैनी है, क्योंकि हम अपने को बेचे बिना नहीं पा सकते। अपनी आत्मा को कहीं गिरवी रखें गे तभी शांति मिल सकती है। सारे लोगों ने अपनी आत्माएं गिरवी रखी हैं। और अगर कभी कोई आदमी आत्मा गिरवी रखने को राजी न हो तो वे खोज-बीन कर ते हैं, कि कहां है—कहां-कहां मेल-ताल बैठ सकता है। मेल-ताल-मेल बहुत जगह बैठ सकता है, लेकिन सब झूठा है। दो व्यक्तियों के बीच कोई ताल-मेल नहीं है अ ौर अगर ताल-मेल हो तो जानना कि उनमें एक व्यक्ति व्यक्ति ही नहीं है, सिर्फ मशीन होगा। अन्यथा ताल-मेल नहीं हो सकता। बुद्ध हैं, महावीर हैं, एपिकुरस हैं, लाओत्से हैं, कन्फ्यूनिसयश हैं, चार्वाक हैं, उपनिषदों के ऋषि हैं, नागार्जुन हैं, शं कर हैं, मार्क्स है, फ्रायड है, नए-नए अदभुत लोग हैं, कृष्णमूर्ति है, रमण है, दोस्त ोवस्की है—सारी दुनिया मग कितने-कितने अदभुत लोग हैं। अगर कोई सोचेगा, तो न मालूम कितनी बार कितनों के पैरेलल, कितनों के समानांतर चल जाएगा! उ ससे जल्दी मत कर लेना। उससे जल्दी यह मत सोचो लेना कि यह आदमी इससे सहमत हुआ, बात खत्म हुई। हम क्यों इतनी उत्सुक हैं किसी से सहमत किसी क ो करोगे में? लेबल लगा लेने में फिर हमको सुविधा हो जाती है। हम समझ लेते हैं कि यह ठीक है। यह आदमी कम्युनिस्ट है। फिर हम इस आदमी के संबंध में सो चने की जरूरत से बच गए। अब हम कम्युनिस्ट के संबंध में जो सोचते है वही इ स पर लागू हो जाएगा, बात खत्म हो गयी। एक कम्युनिस्ट भी दूसरे कम्युनिस्ट जै सा नहीं होता है। एक कम्युनिस्ट, यानी कम्युनिस्ट दो। तीन कम्युनिस्ट यानी कम्यु िनस्ट तीन। तीन कम्युनिस्ट भी एक ही जैसे नहीं हैं। लेकिन कम्युनिज्म का लेबल ल गाकर बड़ी सुविधा मिल जाती है। फिर हमको सोचने की जरूरत नहीं रह जाती। कोई आया और उसने कहा, फलां आदमी मुसलमान है। फिर जो हम मुसलमान के संबंध में धारणा बनाए हैं। अब इस आदमी को जानने की कोई जरूरत न रही। अब वह धारणा काफी है। उसी धारणा को हम इस आदमी पर बिठा लेंगे। और

यह आदमी? यह आदमी बिलकुल अनूठा है। हमारी जो धारणा है, यह उससे बिल कुल भिन्न है। यह आदमी ही अलग है। यह आदमी कभी था ही नहीं। न यह मोह म्मद है, न यह मोहम्मद जिन्ना है, न यह किसी और मुसलमान जैसा है। यह आद मी ही अलग है। लेकिन वह मुसलमान की धारणा बिठाकर हम मुक्त हो जाएंगे। और हम सोचेंगे, हमने जान लिया है। इस आदमी से जानने से बचने की तरकीब है यह। लेबल लगा दिया है, फिर लेबल के संबंध में जो हम मानते हैं वही बात पूरी हो गयी और खत्म हो गयी।

नहीं, एक-एक आदमी को जानना हो तो सीधे जानना पड़ेगा। बीच में लेबल खतर नाक है, क्योंकि कोई आदमी लेबल जैसा नहीं है। आदमी, बस अपने जैसे हैं। कोई आदमी किसी जैसा नहीं है। लेकिन हमें फुर्सत कहां है? हम जल्दी में हैं। हम सब के संबंध में निर्णय लेना चाहते हैं और निर्णय लेने की आसान तरकीब यह है कि हम एक बात कह दें, और खत्म हो जाएं, मुक्त हो जाए। एक लेबल लगा दे औ र छुटकारा हो जाए। इस तरह छुटकारे से कोई मनुष्य की आत्मा से परिचित नहीं हो सकता। इस तरह का व्यक्ति हमेशा अज्ञान में ही जीएगा और मरेगा। वह दू सरे में कभी झांक नहीं सकता, क्योंकि दूसरे का द्वार ही बंद कर देता है। कभी अ ापने अपनी पत्नी की तरफ गौर से देखा है? नहीं, पत्नी मानकर एक लेबल लगा दिया है, बात खत्म हो गयी। शादी न की थी, उस वक्त शायद देखी भी हो। शाद ी के बाद फिर नहीं दिखा है। पच्चीस साल बीत गए होंगे, रोज लगता है कि देखे हैं, लेकिन देखा है कभी गौर से? अब कोई जरूरत नहीं रह गयी, पत्नी है, बात खत्म हो गयी। पति है, बात खत्म हो गयी। आपके घर जो बेटा पैदा होता है, उसे आपने कभी देखा है? बस बेटा है, बात खत्म हो गयी।

बुद्ध बारह वर्ष बाद अपने गांव वापस लौटे थे। उनका पिता क्रोध में था। ऐसे पित ा खोजने कठिन है जो बेटो के प्रति क्रोध में न हों। पिता क्रोध में थे। बुद्ध जैसा बे टा था, तो भी क्रोध में थे। बुद्ध जैसा बेटा, तो भी क्रोध था। घर छोड़कर चला ग या था। बर्बाद कर दिया था घर, एक ही बेटा था। सब घर उदास हो गया था, उ सी पर आशा थी, उसी पर महत्वाकांक्षा थी। सब खंडित हो गई थी। बूढ़ा बाप दु खी था। खबरें आती थी बीच-बीच में कि बेटा ज्ञान को उपलब्ध हो गया। बाप कै से विश्वास करे कि बेटा ज्ञान को उपलब्ध हो जाएगा। खबरें आती थी और बाप कहता था, देखेंगे।

फिर बेटा आया। सारा गांव लेने गया है, शुद्धोधन भी ले ने गए हैं। बुद्ध के पिता भी लेने गए हैं। बुद्ध आकर खड़े हो गए हैं नगर के द्वार पर, और बुद्ध के पिता ने क्या कहा? बुद्ध के पिता ने कहा, मैं अभी भी क्षमा कर सकता हूं। मेरे दरवा जे अभी भी खुले हैं। नासमझ! तू वापस लौट आ! तू ने बहुत भूल की। हमें बहुत दुःख दिया। क्या यह पिता उस बेटे को देख रहा है जो सामने खड़ा है।? नहीं, व ह बारह साल पुरानी तस्वीर, वही सामने अटकी हैं। बेटा नहीं है। बुद्ध ने कहा, अ ाप थोड़ा गौर से देखे। मैं बिलकुल दूसरा हो गया हूं। जो गया था, वही मैं नहीं हूं

। बुद्ध के बाप ने कहा, क्या तू मुझे समझाएगा? मैं तेरा बाप हूं। तेरे खून का क
तरा-कतरा मेरा है। मैं बुझे नहीं जानता हूं। बुद्ध के पिता ने कहा, मैं तुझे नहीं ज
ानता हूं? तू मुझे समझाएगा? गौतम बुद्ध हंसने लगे। उन्होंने कहा कि नहीं, लेकि
न इतना याद दिलाऊंगा—पिता होने से ही आप मुझे समझ लेंगे, यह जरूरी नहीं है
। अपने को ही समझना मुश्किल है, दूसरे को समझना तो और भी मुश्किल है, फि
र क्या मैं निवेदन करूं, कि मैं आपसे आया जरूर, लेकिन आपने मुझे निर्मित नहीं
 किया है। आप एक मार्ग की भांति हैं। एक रास्ता—जिससे मैं गुजरा और आया,
लेकिन मेरी यात्रा अनंत है, आपसे बहुत भिन्न है। एक चौराहे पर हम मिले, वह
चौराहा आप थे। मैं आपसे गुजरा और मैं इस जगत में आया। लेकिन इससे आप
मुझे जान नहीं लेते। जिस रास्ते में मैं गुजर कर आया हूं, क्या वह रास्ता यह कह
 सकता है कि मुझे जानता है? लेकिन बुद्ध के पिता कहने लगे, तू मेरा बेटा है।
मैं तेरा बाप हूं। मैं तुझे नहीं जानता हूं। यह बेटे का लेबल बड़ी तकलीफ दे रहा
है। बड़ा अच्छा होता कि गौतम बुद्ध शुद्धोधन के बेटे न हो तो शायद वे गौतम बु
द्ध को आसानी से समझ सकते, बीच में होते तो शायद वे गौतम बुद्ध को आसान
ी से समझ सकते, बीच में लेबल न होता। लेबल सदा बाधा बन जात हैं।

बुद्ध की पत्नी लेने नहीं आयी गौतम को। सारा गांव लेने आया है, लेकिन यशोधर
ा नहीं आयी है। पति का लेबल बीच में बाधा डाल रहा है। वह क्रोध से भरी बैठी
 है अपने महल में। वह राह देखती है कि आओ और मुझे समझाओ-बुझाओ। पति
 की अपेक्षा, जैसी पत्नी करती है कि चले गए थे बारह वर्ष पहले मुझे क्रुद्ध करके
? अब आओ, मुझे समझाओ-बुझाओ। वह बैठी है महल में। सारा घर चला गया
है। सारा गांव चला गया है। लेकिन यशोधरा नहीं आयी है। वह पति का लेबल ब
ीच में अटका है। बुद्ध चारों तरफ देखते हैं, आनंद से पूछते हैं, यशोधरा नहीं आई
? नहीं आ सकेगी। मैं उसका पति जो ठहरा। बड़ी मुश्किल है उसके आने में। बुद्ध
 कहते हैं, मुझे ही जाना पड़ेगा। बीच में एक द्वार अटका है...वह मुझे नहीं जानती
। वह मुझे नहीं पहचानती वह मुझे नहीं पहचाना सकती। वह पति होना बीच में
रुकावट डाल रहा है। सब तरह की बातें जो हम बीच में स्वीकार कर लेते हैं, सी
धे व्यक्ति को देखने में बाधा डालती हैं। अगर कोई आदमी तय करके आ गया ि
क मैं माओ के विचार का आदमी हूं, फिर वह मुझे थोड़े ही देखता है। बीच में म
ाओ की तस्वीर लटकी है। अब कहां माओ की तस्वीर और कहां मैं! अगर कोई
आदमी तय करके आ जाए कि मैं एम. एन. राय से मेल खाता हूं, फिर वह मुझे
नहीं सुन रहा। बोल मैं रहा हूं सुना जा रहा है एम. एन. राय को। फिर वह मुझे
नहीं सुन रहा है। अगर कोई आदमी तय करके आ गया कि कृष्णमूर्ति और मेरे ि
वचार एक जैसे हैं, फिर वह मुझे नहीं सुन रहा है। भीतर ताल-मेल कर रहा है ि
क ठीक है, यही कृष्णमूर्ति ने भी कहा है। तो फिर मुझे नहीं सुन रहे आप। आप
अपने ही मन की धारणाओं और प्रतिमाओं में भटके हुए हैं। तब आप मुझे नहीं सु
न सकेंगे। और अगर आप इसी तरह सुनने की आदत बना लेते हैं तो आप फिर ि

कसी को नहीं सुन सकेंगे। और अगर यही आपके सोचने का ढंग है, तो आप कभी नहीं सोच सकेंगे। सोचने के लिए चाहिए प्रतिमा रहित चित्त—निष्पक्ष, बिना किसी पूर्व धारणा के, बिना किसी लेबल के, बिना किसी बीच में चश्मे के, सीधा आर-पार देख सकें जो है। उसे ही देख सके, क्यों करें तुलना, क्यों करें कम्परीजन? एक गुलाब के फूल के पास खड़े हैं तो फौरन आदमी कहता है, मैंने इससे भी अच्छे-अच्छे फूल देखे हैं—देखे होंगे। लेकिन यह फूल कभी नहीं देखा। और अच्छे-अच्छे फूल भी रहे होगे। फिर यह फूल अपनी ही तरह का फूल है। ऐसा फूल कभी भी नहीं रहा। इसी को देखो न! बीच में उन गए बीते फूलों को क्यों लाते हो? लेकिन आदमी का मन—इसको देख ही नहीं सकता सीधा। बीच में कुछ लाएगा, लाएगा, तब देखेगा। और तब देखना मुश्किल हो जाता है। और जब बहुत सी पर्तें बीच में आ जाती हैं तो हम न सुनते हैं, न हम देखते हैं, न हम विचारते हैं। बस हम अपने ही विचारों की, अपनी ही धारणाओं की, अपने ही पक्षपातों की, दीवारों में बंद, अपनी ही कब्र में छिपे समाप्त हो जाते हैं। हमारा बाहर से कोई कम्युनिकेशन, कोई सम्वाद नहीं हो पाता है।

इस भाषा में सोचें ही मत कि मेरा विचार किससे मेल खाता, किससे नहीं खाता। निष्प्रयोजन है वह बात। मैं क्या कहा हूं, उससे समझें, उसे सोचें। मैं क्या कहता हूं, उसे ही समझ लें, सुन लें और इसकी भी फिकर न करें कि आप मुझसे मेल खाते हैं कि नहीं खाते हैं। इसकी भी जरूरत नहीं है। आपको मेल खाने की क्या जरूरत है? हो सकता है, थोड़ी देर मेरे साथ चलना हो जाए—प्राप्त है। फिर हम विदा हो जाएंगे। रास्ते से अभी मैं आया रास्ते पर आया हूं। पड़ोस में कोई चलता हुआ दूसरे रास्ते से आ गया है। हम रास्ते पर दोनों मिल लिए हैं, दस कदम साथ भी चल लिए हैं, समानांतर। फिर वह अपने रास्ते विदा हो गया है। मैं अपने रास्ते विदा हो गया है। दस क्षण साथ थे, अच्छा था। अब साथ नहीं हैं, वह भी अच्छा है। निरंतर बहुतों के साथ चलकर यह पता चलता है कि हम सिर्फ अपने ही साथ हो सकते हैं, किसी के साथ नहीं। जल्दी क्या है—आग्रह क्या है, कि किसी को पकड़ लें। इतनी कमजोरी क्या है? इसलिए मुझे सुनते वक्त यह भी फिकर न करें कि आप मुझसे सहमत होते हैं या नहीं होते हैं। अगर इस चिंता में पड़ गए आप मुझे समझ ही नहीं पाएंगे। आप तो सहमत-असहमत होने की चिंता में उलझ जाएंगे और समय व्यतीत हो जाता है। सीधा सुनें, साफ सुनें। और देखें कि क्या सच है उसमें—क्या झूठ है? तुलना में न पड़ें। तुलना अत्यंत घातक है। तुलना बहुत ही घातक है। और प्रभावित होना, बहुत ही खतरनाक है। किसी को किसी से प्रभावित होने की कोई भी जरूरत नहीं है। लेकिन ऐसे लोग हैं, जो प्रभावित करना चाहते हैं। यह कौन लोग है जो प्रभावित करना चाहते हैं? जिनके भीतर भी कुछ इनफिरिटी काम्प्लेक्स है, जिनके भीतर भी कुछ हीनता की ग्रंथि है, वे दूसरों को प्रभावित करे अपनी हीनता के भाव को पूरा करना चाहते हैं। सब गुरु, सब नेता हीनता की ग्रंथि से पीड़ित होते हैं। आदमियों की भीड़ को आस-पास इकट्ठा करे

, उनकी छाती पर सवार होकर वे अनुभव करते हैं कि हम—हम कुछ हैं। कितने आदमी हमारे पीछे हैं। गिनती रखते हैं गुरु के कितने शिष्य हैं, कितने चेले मुंड़े हैं , कितनों के कान फूंके हैं। नेता फिकर रखता है कि कितने अनुयायी हैं। संख्या ब. ढाता है। और इस सबके कारण क्या है? कोई आत्मालानि, कोई आत्महीनता है खुद होना पर्याप्त नहीं है। किसी भीड़ को जोड़ लेना जरूरी है तभी लगेगा कि मैं कुछ हूं। अकेले हो नो काफी नहीं है। और जो आदमी अकेले होने में पर्याप्त नहीं है वह आदमी सत्य के सौंदर्य का कभी नहीं जान सकेगा।

सत्य का सौंदर्य भीड़ के साथ अपने को भर लेने में नहीं है। बल्कि समस्त भीड़ से अपने को खाली कर देने में है। और उस जगह, जहां चित्त बिलकुल एकांत और मौन और अकेला होता है, वहीं वे फूल खिलते हैं जो सत्य के, सौंदर्य के, शिव के हैं। लेकिन हम! हम सब एक दूसरे से अपने कार्य को बांध कर चलते हैं। बांध ने के रास्ते बहुत तरह के हैं। कोई अपने को पत्नी से बांधे है, कोई पति से, कोई बेटे-बेटियां से, कोई पार्टियां से, कोई संप्रदाय से कोई शिष्यों से, कोई आश्रमों से। लेकिन अपने से सब बांधे हुए हैं।

पाम्पेई का नगर जला—विस्फोट हुआ—पाम्पेई के ज्वाला मुखी का। आधी रात थी, तीन बजे होगे। सारा गांव भागने लगा। को अपने बेटो को ढूंढ़ रहा है, कोई अपनी पत्नियों को, कोई अपने शिष्यों का, कोई अपने अनुयायियों को, कोई धन को, क ोई मकान को, कोई कुछ और को—जो-जो ले जा सकता है, जो-जो बचा सकता है उसकी चेष्टा में संलग्न है। एक आदमी है, गांव में एक संन्यासी भी है। सुबह त ीन बजे रोज अपनी छड़ी लेकर घूमने निकलता था। वह सुबह घूमने निकला है। स ारा गांव भाग रहा है। जो भी उस संन्यासी के पास से गुजरता है, वह उसे गौर से देखता है, और कहता है, खाली हाथ? सामान कहां है? अकेले? संगी-साथी क हां हैं? परिवार-प्रियजन कहां है? वह संन्यासी कहता है, कोई भी नहीं है, अकेला ही हूं। मैं ही अपना परिवार हूं मैं ही अपना प्रियजन हूं मैं ही अपनी संपदा हूं, कु छ बचाने को नहीं है। जो हूं, अकेला हूं। बस चल रहा हूं। उस वक्त भीड़ ने अ केला एक आदमी शांत है। उस भीड़ में उस उपद्रव में अकेला एक आदमी सुबह घूमने निकला है। वह ज्वालामुखी जल रहा है। लोग अपना सामान अपनी पीठों पर बांधे जा रहे हैं। जो छूट गया है उसके लिए दुखी है, सामान के लिए। जो बच ग या है, उसे छाती से चिपटाए हैं—पीड़ित, परेशान चिंतित, वह पाम्पेई नगर से, भा गता हुआ सब-कुछ, सारा जनसमूह—एक आदमी लेकिन न चिंतित है, न पीड़ित है , न परेशान है, जो भी उसके करीब से गुजरता है; दुखता है गौर से। सुबह घूमने निकला हो? वह छड़ी हिलाता हुआ, सुबह का गीत गाता हुआ—वह कहता है, अकेला हूं। कोई भी खोने को नहीं है, जो भी खो सकता था, खुद ही खो दिया है। जो भी छूट सकता था, खुद ही छोड़ दिया। अब तो वही बचा है जो न खो सक ता है, न छूट सकता है। अब तो बस मैं ही हूं। पास से कोई निकलता है, थोड़ी देर कोई साथ हो लेता है। लेकिन न कोई संगी है, न कोई साथी है। पास से कोई

निकलता है, कोई हाथ थाम लेता है, लेकिन न कोई मित्र है, न कोई शत्रु है। ऐसी चित्त दशा में व्यक्ति स्वयं की आत्मा को खोज पाता है। उसके बिना नहीं खोज पाता है। प्रभावित, पकड़ा हुआ, किलगिंग माइंड किसी को तुलना करता हुआ, किसी के पीछे चलता हुआ, कभी अकेला नहीं हो पाता। और टू बी अलोन, अकेला होना ऐसा सौंदर्य है, जिसकी कल्पना करनी मुश्किल है।

मैंने सुना है कि जापान के एक सम्राट को खबर मिली कि गांव में बगीचे में, मार्निंग ग्लोरी के, सुबह खिलने वाले फूल अदभुत रूप से खिले हैं। पूरे बगीचे में फूल ही फूल खिले हैं। सम्राट ने खबर भेजी उस माली को कि मैं देखने आना चाहता हूं। माली ने कहा, कल सुबह प्रतीक्षा करूंगा। सम्राट को बताया गया है कि रत्ती-रत्ती, इंच-इंच जगह फूलों से भरी है। फूल ही फूल हैं। सारा बगीचा मार्निंग ग्लोरी से ही भरा हुआ है। सुबह सूरज निकला है, सम्राट रथ पर सवार होकर बगीचे के सामने जाकर खड़े होकर हैरान हो गया है। बगीचे में एक भी फूल नहीं है। सब फूल तोड़ कर जैसे फेंक दिए गए हैं। दूर कोने में बसा एक फूल जो बड़े खयाल से दिखाई पड़ता है, उनकी शाखा पर अकेला एक फूल है। वह माली से पूछता है, मैंने तो सुना था बहुत फूल है। कहां हैं वे बहुत फूल? उस माली ने कहा, उन बहुत फूलों में एक को भी देखना संभव नहीं हो पाता। उन बहुत फूलों में, उस बहुत भिड़ें में एक को भी देखना संभव नहीं हो पाता। मैंने उन सब को अलग कर दिया, एक को बचा लिया है, ताकि आप एकांत में जान सकें, देख सकें, मिल सकें। और एक से मिल गए तो सब से मिल गए, क्योंकि जो एक में है वह सब में है। और उस भीड़ में, उतने फूलों में आप शायद तुलना करते कि यह अच्छा है, वह बुरा है, इसमें खो जाते। यह सुंदर है, वह सुंदर नहीं है। इसमें भटक जाते और न देख पाते। अब एक ही है। न कोई छोटा है, न कोई बड़ा है। न सुंदर है, न असुंदर है। तुलना का उपाय नहीं है। यह फूल है और आप हैं। बैठ जाए इस फूल के पास, जिए इस फूल को। इस फूल को खिलने दें। इसके अकेलेपन में आपकी चेतना पर तो शायद इस फूल में मिलन हो जाए, इसकी आत्मा से मिलन हो जाए। लेकिन वह सम्राट उस फूल के पास खड़े होकर कहने लगा, सच ही इससे बड़ा फूल नहीं देखा। बहुत फूल देखे लेकिन वे छोटे थे। उस माली ने कहा, व्यर्थ मेरी मेहनत हुई। मैंने वह सारे फूल तोड़े, वह बेकार गया। आपके चित्त से तुलना नहीं जाती। जो देखे थे फूल, वे अब कहां है? जो है, उसे देखें। जो देखे थे, उनसे क्यों तौलते हैं? स्मृति के सिवाय वे कहां हैं, स्मृति की राख के सिवाय। उस राख को हटा दें, मन के दर्पण को होने दें--धूल से मुक्त--धूल से पृथक, झांकने दें उसमें जो है। लेकिन नहीं, वह राजा कहता है, ठीक कहते हो। फूल बहुत बड़ा है, मैंने बहुत देखे, उन सबसे बड़ा है, उन सबसे बहुत सुंदर है। शायद ही इतना बड़ा फूल होता हो। माली अपना सिर ठोक लेता है, और कहता है, मेरे फूलों, मैंने तुम्हें तोड़ डाला, व्यर्थ मैंने मेहनत की। जो भीड़ से घिरा है वह अकेले के सामने खड़ा होकर भी भीड़ से घिरा रहता है। मैंने व्यर्थ ही इतने फूल तोड़ डाले। हम सब मन में भ

ी घिरे हैं। मैं आपसे कुछ कह रहा हूं, एक फूल आपके सामने रख रहा हूं। आप कहते हैं, किस बगिया से मेल खाता है? फलां-फलां बगिया में देखा था, फलां बग ीचे में देखा था। फलां जंगल में किसी वृक्ष पर यही फूल था। वही दिन यह? पंखुि रया वैसी है, रंग वैसा है। नहीं, कोई फूल वैसा नहीं है। फूल अपने ही जैसे हैं। ए क-एक चीज का अपना व्यक्तित्व है, और इसीलिए आत्मा है। जिस दिन सब ची जें एक
सी होंगी। उस दिन आत्मा नहीं होगी। लेकिन हम सब आत्मा के दुश्मन है। हम सब आत्मा के हत्यारे हैं। हम सब तरह से व्यक्तित्व को पोंछकर मिटा देना चाहते हैं। और एक भीड़ चाहते हैं जो एक जैसी दिखाई पड़ती हो। अनुयायी चाहते हैं। संप्रदाय चाहते हैं। न मैं अनुयायियों को मानता हूं, न गुरुओं को। न मैं किसी से प्रभावित हूं, न किसी को प्रभावित करने की इच्छा है। न आपसे आशा करता हूं—ि क आप तुलना करें। सुनें। समझें। छोड़ दें—फिर। न मेरे साथ चलने की जरूरत है। न मेरे पीछे चलने की जरूरत है। थोड़ी देर के लिए मिल गए। थोड़ी देर के लिए हंस-बोल लिए। फिर अपना-अपना रास्ता है। कोई किसी के साथ नहीं है। सब अ केले हैं।

एक और मित्र पूछते हैं, कि ईश्वर को हम खोजें ही क्यों? प्रभु मंदिर के द्वार की तलाश ही क्यों करें?

मत करें, लेकिन बच न सकेंगे करने से। यह भी पूछते हैं, कि क्यों करें? क्यों? ि जसके मन में है वह खोज से नहीं बच सकता। आप यह पूछते हैं, क्यों खोजें प्रभु के मंदिर को? मत खोजें, मैं कहता हूं, लेकिन आप पूछ रहे हैं क्यों? और जो क यों, पूछता है, उसकी खोज शुरू हो गयी। क्यों ही तो खोज है। व्हाई? जब भी क ोई आदमी पूछता है, क्यों? तो उसकी खोज शुरू हो गयी। और ऐसा आदमी खोज ना मुश्किल है जो न पूछता हो क्यों? ऐसा आदमी मिल सकता है जो न पूछता ह ो क्यों? ऐसा आदमी मिल सकता है जिसने किसी क्षण में पूछा हो मैं क्यों हूं? जि सने यह न पूछा हो, अगर मैं न होता तो क्या हर्ज था? जिसने यह न पूछा हो ि क यह सब क्यों है? ये चांद-तारे क्यों हैं, यह पृथ्वी क्यों है, यह वृक्ष क्यों है, ये फूल क्यों खिलते हैं, यह हवाएं क्यों चलती है? ये न चलतीं तो क्या हर्ज था? जि सके मन में क्यों न उठा हो, ऐसा कहीं आदमी अगर हो—मुश्किल है, ऐसा आदमी होना। और अगर कहीं कोई ऐसा आदमी मिल जाए तो समझना कि वही परमात मा है। परमात्मा को छोड़कर और सबके मन में क्यों उठेगा। आर अगर क्यों मिटा ना है तो परमात्मा तक पहुंचना पड़ेगा। जिस दिन परमात्मा तक आप भी पहुंच ज ाएंगे उसी दिन क्यों भी गिर जाता है। परमात्मा को जान लेने का मतलब है, जी वन के क्यों को जान लेना। परमात्मा को जान लेने का अर्थ है, उस क्यों की दौड़ से मुक्त हो जाना यह जो कांटे की तरह शूल की तरह चुभता है? यह सब है क यों? यह न तो हो तो हर्ज क्या है? यह उसी दिन मिटता है, जिस दिन हम खुद प्रभु मंदिर में प्रविष्ट हो जाते हैं। अगर क्यों से मुक्त होना है तो खोज करनी पड़े

गी। अगर प्रश्न से मुक्त होना है तो खोज करनी पड़ेगी। अगर जिज्ञासा से ऊपर उ
ठना है तो खोज करनी पड़ेगी। अगर खोज से उठना है, खोज से बचना है। खोजन
ा पड़ेगा। और खोज है। खोज कोई भी रूप ले ले, इससे बहुत फर्क नहीं पड़ता। अ
क्सर खोज दूसरे रास्तों पर भटक जाती है। और जब खोज दूसरे रास्ता पर भटक
जाती है—जैसे एक आदमी धन खोज रहा है, उसकी भी खोज है, लेकिन वह खोज
धन की है। वह शायद और गहरे में अपने से नहीं पूंछ रहा कि धन तो मैं खोज
रहा हूं, लेकिन धन किसलिए खोज रजा हूं? शायद मन कहेगा इसलिए कि धन ह
ोगा तो बल होगा, शांति होगी मेरे पास। प्रतिष्ठा होगी, यश होगा। लेकिन वह यह
नहीं पूछता है, कितने लोगों के पास यश रहा—कितने लोगों के पास बल रहा? ि
कतने लोगों की प्रतिष्ठा रही, वे सब कहां हैं? वे सब कहां खो गए? धन की प्रति
ष्ठा और बल कितनों के साथ रहा है, वे सब अब कहां हैं?

च्वांग्त्से निकलता था एक मरघट से। किसी की खोपड़ी उसके पैर से लग गई। रा
त थी अंधेरी। पैर टकरा गया किसी खोपड़ी से। वह खोपड़ी उठाकर उससे बहुत
क्षमा मांगने लगा। उसके मित्र कहने लगे, क्या करते हैं आप? खोपड़ी से क्षमा मां
गते हैं। उसने कहा, तुम्हें पता नहीं। यह समय का थोड़ा फर्क है, अगर यह आदम
ी जिंदा होता तो मेरी बड़ी मुसीबत होती। यह तो समय का थोड़ा फर्क है। यह अ
ादमी जिंदा भी हो सकता था। लोगों ने कहा, लेकिन मर गया है, छोड़ो इसे, फेंक
ो। च्वांग्त्से ने कहा, शायद तुम्हें पता नहीं है, यह साधारण लोगों का मरघट नहीं
है, बड़े लोगों का मरघट है। यह कोई साधारण आदमी नहीं है, यह कोई बड़ा आ
दमी रहा होगा, कोई सम्राट, कोई धर्मगुरु, यह बड़ों का मरघट है। वर्ग जिंदगी
में ही थोड़ी है, मरने के बाद भी वर्ग हैं। मरघट भी अलग-अलग हैं। छोटे आदमी
एक जगह मरते हैं, एक जगह दफनाए जाते हैं। बड़े आदमी और ही जगह दफना
ए जाते है। दफनाने में भी फर्क है। मरने के बाद भी क्लासेस हैं। वहां भी गरीब
और अमीर है। यह बड़े आदमियों का मरघट है, यह कोई साधारण मरघट नहीं है
। अगर यह आदमी जिंदा होता, च्वांग्त्से बड़े मुश्किल में पड़ जाते। क्षमा मांगनी
जरूरी है। फिर वह उस खोपड़ी को साथ में ले आया। मित्रों ने कहा, यह क्या कर
ते हो? उसने कहा, इस खोपड़ी को अपने पास रखूंगा। किसलिए? उसने कहा, इस
लिए कि मैं जानता हूं कि भीतर भी ठीक ऐसी ही खोपड़ी है। और आज नहीं क
ल किसी मरघट पर लोगों के पैरों की टक्कर खाएगी। मित्र कहने लगे, याद करने
से फायदा क्या है? और बेचैनी होगी। उसने कहा, बेचैनी हो तो अच्छा है ताकि
मैं उसी को खोज सकूं जहां चैन मिल जाता है। नहीं तो बेचैन को ही खोजता रहूं
गा। खोपड़ी को पास रख लिया था फिर उसने, और कोई अगर गाली देता उसे त
ो वह खोपड़ी की तरह देखता। कोई अगर अपमान करता तो वह खोपड़ी की तर
ह देखता। कोई अगर उसे मारता तो वह खोपड़ी की तरफ देखकर हंसता। लोग
कहते, यह क्या करते हो? च्वांग्त्से कहता, मैं यह कहता हूं, समय का थोड़ा सा
फासला है। आज नहीं कल, यह खोपड़ी मरघट पर पड़ी होगी। तुम लात मारोगे

और मैं कुछ न कर सकूंगा। जब कुछ न कर सकूंगा तो आज भी कुछ करने का क या अर्थ है! समय का थोड़ा फासला है।

धन को हम इकट्ठा कर रहे हैं, लेकिन धन को हम खोज रहे हैं—खोज तो हम कर रहे हैं—लेकिन किसको खोज रहे हैं? यश खोज रहे हैं, लेकिन क्या, कितने लोगों ने यश को खोजा है? क्या मिल गया हो यश को पाकर? कितने लोग हो जाते हैं बड़े पर, क्या पा लेते हैं? क्या मिल गया है वहां? कोई नहीं पूछ रहा है। शाय द हम पूछते हैं, लेकिन काफी नहीं पूछते। पूछते हैं, लेकिन पर्याप्त नहीं पूछते। खो जते हैं, लेकिन चरम खोज नहीं है। इसलिए कुछ भी व्यर्थ खोजने में लग जाते हैं और सार्थक की खोज से बच जाते हैं। पूछना जरूरी है, यश खोजते हैं किसलिए? क्यों खोजें यश? क्या होगा—राष्ट्रपति को हो जाए तो? क्या होगा?

मैंने सुना है, एक जेलखाना है, कारागृह है और कारागृह का छोटा सा अस्पताल है। कारागृह में जो बीमार पड़ते हैं, वे उस अस्पताल में भर्ती किए जाते हैं। कारागृ ह का अस्पताल है, न उसमें खिड़कियां हैं—थोड़ी मोटी मजबूत दीवारें हैं। कैदी हैं, बीमार हैं तो भी क्या हुआ। हाथ में, पैरों में, जंजीरें हैं, अपनी अपनी लोहे की ख ाट से बंधे हैं। सिर्फ एक द्वार है डाक्टर के भीतर आने-जाने का। उस द्वार पर नंब र एक की खाट है। उस नंबर एक की खाट का जो मरीज है वह बड़ प्रतिष्ठित ह ो गया है उस अस्पताल में कि नंबर एक की खाट पर वह है। और न केवल नंबर एक की खाट पर है, उसकी स्थिति को उसने ऐसा बना लिया है कि सारा अस्पत ाल यही चाहता है कि कब भगवान करे, यह मर जाए और मैं इस नंबर एक की खाट पर हो जाऊं। क्योंकि वह नंबर एक की खाट का मरीज रोज सुबह उठता है, बाहर की तरफ देखता है और कहता है, आह, कैसा सूरज निकला है, कैसी ि करण बरसती हैं। गुलमोहर खिल गए हैं। सारा आकाश लाल फूलों से भरा है। सां झ होती है और कहता है, चांद निकल आया। रातरानी की सुगंध हवाओं में भर कर आ रहे हैं। कितने सुंदर लोग रास्ते से निकलते हैं, और उस स्त्री को? कितन ा कुआंरापन है उसके चेहरे पर? और सारा अस्पताल पागल हो जाता है। अपनी-अपनी खाट, अपनी जंजीर लोग हिलाने लगते हैं। और क्रोध से भर जाते हैं कि नं बर एक ही खाट मिले, कब मरे यह आदमी। लेकिन वह आदमी नहीं मरता।

पदों पर जो रहा हैं उनका मरना जरा मुश्किल होता है। लेकिन फिर भी मरना तो पड़ता है। पदों के आदमियों को भी करना पड़ता है। कितनी है मुश्किल से भरो, मरना पड़ता है। मरना सभी को पड़ता है। कभी-कभी उसको हृदय का दौरा हो जाता है, सारा अस्पताल खुश होता है और वह कहते हैं, शायद अब यह गया। अ ौर डाक्टरों की खुशामद में लग जाते हैं कि खयाल रखना, अब की बार जगह खा ली हो तो हमारा खयाल रखना। यही सब जो दिल्ली में चलता है वही सब उस अस्पताल में भी चलता है। वही सब चल रहा है। वह दो-तीन दफे धोखा दे जाता है नंबर एक की खाट का। नंबर एक की खाट के आदमी बड़े धोखेबाज होते हैं। कई दफा हृदय का दौरा आता है और बच जाता है। तब जब बच जाता है तो

कहते हैं कि धन्यवाद, भगवान को धन्यवाद, और भीतर कहते हैं हाय! मौका चूक गया। सब उसको कहते हैं, खुशी हुई बहुत, तुम बच गए। चले जाते बड़ा दुःख होता। और उनके चेहरे देखे तो ऐसा लगता है कि इतना दुःख उन्हें और किसी ब ात से नहीं हो सकता था जितना इसके बचने से हो गया है। वह भी बस जानता है ,क्योंकि इसी तरह वह भी इस नंबर एक की खाट पर आया है। यह कहानी न यी नहीं है, वह कोई नंबर एक की खाट पर पहला आदमी नहीं है। यह नंबर एक की खाट अनादि-अनंत है। यह पहले से मौजूद है। इस पर लोग आते ही जाते हैं। और जब वह देखता है कि लोग धन्यवाद दे रहे हैं तो बहुत मुस्कुराता है और ि फर बातें वही कह देता है। सुबह से फिर फल खिल जाते हैं, पक्षी उड़ते हैं। फिर बगुलों की सफेद कतार निकल जाती है और सब तड़प जाते हैं अपनी-अपनी खाट पर और अपनी-अपनी जंजीर में सब बंधे तड़पते रहते हैं। लेकिन तब तक वह आदमी धोखा देगा? वह मर जाता है। सारे अस्पताल में डाक्टरों की खुशामद होत ी है। फिर एक आदमी को, जो खुशामद में जीत जाता है, उसे पहले नंबर एक क ी खाट पर पहुंचा दिया जाता है। वह आदमी पहुंचता है नंबर एक की खाट पर। तो देखो उसकी अकड़। जब वह चलता है अपनी खाट से नंबर एक की खाट की तरफ। देखो उसकी अकड़ वहां की जंजीरें ऐसी मालूम पड़ती हैं जैसे आभूषण हों। कैदी के वस्त्र ऐसे मालूम पड़ते हैं जैसे कोई स्वर्ग से देवताओं के वस्त्र उतरे हों। प हुंच जाता है, नंबर एक की खाट पर, बैठ जाता है। बाहर देखता है। बाहर कुछ भी नहीं है, एक बड़ी दीवार है पत्थरों की, और कुछ भी नहीं है। न सूरज दिखाई पड़ता है, न गुलमोहर के फूल। न रात को चांद देखता है, न बगुलों की कतार है, न सुंदर स्त्रियां निकलती हैं। न रातरानी की, गंध आती है। बात कुछ भी नहीं है, पत्थरों की एक बड़ी लंबी दीवार है। वह आदमी तो चौंक जाता है, पीछे लौ टकर क्या कहे? लेकिन फिर खयाल आता है कि अगर मैं कहूं कि बाहर सिर्फ पत् थर की दीवार है तो मैं ही बुद्धू बनूंगा। और कोई अर्थ न होगा। लोग तब हंसेंगे ि क हमने तो पहले कहा था। सब कहेंगे, हमने तो पहले कहा था, वहां कुछ भी नह ीं है। वे सब कहेंगे जिन्होंने कि खुशामद की थी पहुंचने की। वे कहेंगे, वहां तो कु छ भी नहीं है। वह आदमी पीछे लौटकर कहता है, अहा, कैसा सूरज निकला है। गुलमोहर खिले हैं। फूल झर रहे हैं, आकाश में बादल तैर रहे हैं। कैसा अदभुत ल ोक है बाहर! हे परमात्मा फिर पागल हो जाता है कि अब यह दुष्ट कब मरे। फि र वही चलता है, वह अस्पताल में चलता ही रहता है। नंबर एक पहुंचने वाले लो ग मरते रहते हैं और दूसरे लोग नंबर एक पर पहुंच की दौड़ में लगे रहते हैं। औ र जो भी नंबर एक पर पहुंच जाता है, वह जो इटरनल-इलूजन है, वह जो अनंत प्रभु है, वह उसको कायम रखता है। नहीं तो वह बुद्धू बन जाएगा, लोग क्या क हेंगे? और वह भ्रम जारी है।

पूछना जरूरी है कि यश को खोजकर क्या खोज लेंगे? यश को खोजकर किसी ने क्या खोज लिया है? धन को खोजकर क्या खोज लेंगे? धन को खोजकर किसने क

या खोज लिया है? खोज तो कोई और है। लेकिन उस खोज की जगह हम कुछ और खोज रहे हैं। हम कुछ सब्स्टीटयूट खोजें, कुछ परिपूर्वक खोजें बना ली हैं और जीवन उनमें नष्ट हो जाता है। और हम खोज भी नहीं पाते जिसे खोजना था। अ ौर वहां भटक जाते हैं जिसे खोजने का कोई अर्थ न था। खोजना उसे ही है जिसे ईश्वर कहते हैं। ईश्वर का मतलब क्या है? ईश्वर का मतलब है, खोजना उसे ही है जो जीवन का परम अर्थ है। खोजना उसे ही है जो जीवन की गहनतम गहराई है। खोजना उसे है जो जीवन की उच्चतम ऊंचाई है। खोजना उसे है जो अस्तित्व का सार है। खोजना उसे है, वह, जो एग्जिस्टेंस है। वह जो अस्तित्व की आत्मा है। ईश्वर का क्या मतलब है? ईश्वर की शक्ति। बातचीत में बहुत मुश्किल में डाल दिया है। ईश्वर की बिलकुल शक्ति, बातचीत में ऐसा काम कर दिया है कि ई श्वर की अर्थवत्ता ही खो गयी है। ईश्वर की अर्थवत्ता है अस्तित्व की आत्मा हम हैं। लेकिन यह होना क्या है, क्यों है? कहां है? कहां से है? कहां की तरफ है? इ स पूरे होने को, इस बीइंग को, इस आत्मा को जानना ही प्रभु के मंदिर की खोज है। इसे खोजे बिना, हम कुछ भी खोजते रहें। हम कुछ भी पा लें, कुछ अर्थ नहीं। पाते ही—पाते ही, हम पाएंगे सब, व्यर्थ हो गया। जो भी हम पा लें धन पाले, धन पाते ही व्यर्थ हो जाता है। धन के पाने का एक ही लाभ है, और वह लाभ व ह है कि धन पाते ही धन व्यर्थ हो जाता है। और निर्धन होने की क्षमता उपलब्ध हो जाती है। और कोई लाभ नहीं है। यश पाते ही यश व्यर्थ हो जाता है, और क ोई चाहे तो बिना यश के जीने की क्षमता उपलब्ध हो जाती है। और कुछ लाभ न हीं है।

लेकिन, धोखा, आत्मवंचना गहरी है। एक वंचना से छूटते हैं कि तत्काल दूसरी वं चना पकड़ लेते हैं। एक यात्रा पूरी नहीं हो पाती कि नयी यात्रा शुरू कर लेते हैं। और कोई नहीं पूछता कि इस सबको करने से होगा क्या?

मैंने सुना है, रूस में एक लोक कथा है। लोक कथा है कि एक वृक्ष के ऊपर सुबह -सुबह एक कौवा बैठा हुआ है। और उस वृक्ष के नीचे एक कवि विश्राम कर रहा है। सूरज निकला है, पक्षी उड़ते हैं, गीत गाते हैं। उस एकाकी कौवे के बैठे हुए वृक्ष के नीचे वह अकेला कवि अपना गीत गाने लगता है। वह एक गीत की चार कडियां गाता है और कहता है कि मैंने सब धन पा लिया, सब धन—ध्यान रहे, कु छ भी बचा नहीं। मैं कुबेर हो गया। सोलोमन का खजाना मेरे हाथ में है। अब मु झे पाने को शेष क्या है? वह कौवा ऊपर से जोर से हंसता है। कवि घबरा जाता है। वह कौवे की तरफ देखता है, कौवा कहता है, सो व्हाट? पा लिया सब, इससे क्या होता है? कवि कहता है, नासमझ कौवे, तुझे क्या पता कि धन क्या खूबी की चीज है। कौवा कहता है, ठीक कहते हो। धन का पागलपन आदमियों को छो. डकर पशु-पक्षी में नहीं है। और हम हंसते हैं कि आदमी धन को पाकर समझता है कि कुछ पा लिया। क्या फायदा, क्या मिल गया, सो व्हाट? कवि कहता है, छो. ड अच्छा धन को। मैं सारी पृथ्वी का चक्रवर्ती सम्राट हो गया हूं। सारी पृथ्वी पर

मेरा झंडा फरा गया है। सब पर मेरा राज्य है, सब मुझे जीतने को कुछ न बचा। सब मैंने जीत लिया है। वह कौवा कहता है, सो व्हाट? फहर गया झंडा, क्या होग ा इससे? जीत लिया सबको, क्या होगा इससे? क्या मिलेगा इससे? तुम क्या हो जाओगे इससे? चक्रवर्ती होने से तुम क्या हो जाओगे वह कवि कहता है, नासमझ, तुझे कुछ पता नहीं। समझता नहीं ठहर, मैं तुझे तीसरी कविता सुनाता हूं। और कवि तो रुकते नहीं, कवि सुनाए ही चले जाते हैं, वह कौवा ही सुनने वाला हो। वह तीसरी कविता सुनाता है—नासमझ, कोई फिकर नहीं। वह कहता है, फिर ती सरी कविता कहता है। मैंने गीता जान ली, कुरान जान लिया, बाइबिल जान लिय ा, मैंने सब जान लिया, मैंने सब ज्ञान इकट्ठा कर लिया। मैं सर्वज्ञ हो गया हूं। जो भी जाना जा सकता है, सब जानता हूं। जो भी लिखा है, सब मैं पढ़ा हूं। मुझसे ब. डा पंडित कोई भी नहीं। मैं महापंडित हूं। वह कौवा कहता है, सो व्हाट? इससे क या होता है? कवि गुस्से में किताब फेंककर चल पड़ा है कि कहां से नासमझ कौवे से मुकाबला हो गया है। हर चीज में कहता है, सो व्हाट? वह कौवा कहता है, भाग जाओ किताब छोड़कर। इससे भी कुछ नहीं होता। सो व्हाट?

वह कौवा ठीक कहता है। चाहे यश, चाहे धन, चाहे पाडिंत्य और चाहे त्याग, छो. डकर भाग जाओ सब-कुछ। कुछ भी नहीं होता। इस सबसे कुछ भी नहीं होता। तो लोग क्यों करते हैं इसे? लेकिन कुछ होता है। कौवा कुछ गलत कहता है। शायद कौवा आदमी को नहीं समझता है इसलिए ऐसी बातें कहता है। हो सकता है कौ वा अंततः ठीक कहता हो। लेकिन आदमी कहेगा, गलत कहता है। कुछ जरूर हो ता है यश पाने से, धन पाने से। त्याग करने से, पांडित्य पाने से कुछ जरूर होता है। कौवे को पता नहीं, वृक्षों को पता नहीं, पक्षियों को पता नहीं। आदमियों को पता है। कुछ जरूरी होता है। कुछ होता है। आदमी का अहंकार भरता है, इगो ब. ढता है। मैं कुछ हूं। और मजा यह है कि जिन्हें यही पता नहीं कि मैं क्या हूं, उन को यह भ्रम हो जाता है कि कुछ हूं। अहंकार भरता है। अहंकार से बड़ा असत्य और कुछ भी नहीं है। एक असत्य मजबूत होता है, एक झूठ मजबूत होता है। औ र अहंकार से बड़ा कुछ असत्य नहीं, कोई बड़ा झूठ नहीं।

मैंने सुना है कि केलिफोर्निया की एक झील के किनारे एक आदमी मछलियां मार रहा है। सामने ही तख्ती लगी है कि मछलियां मारना सख्त मना है, लेकिन वहीं बैठकर मछलियां मार रहा है। आदमी का मन कुछ ऐसा है, जहां तख्ती लगी हो, मना हो, वहीं तबियत मछली मारने की होने लगती है। तख्ती लगाना बड़ा खतर नाक है। अगर मछलियों को मारना तो मछली न मारने की तख्ती कभी मत लगा ना। नहीं तो मछलियां मरेंगी। मछलियां मारना मना है। वह आदमी वहीं बैठकर मछलियां मार रहा है। जगह-जगह आदमी मिलेंगे आपको, जहां-जहां मछलियां मा रना मना है वहीं-वहीं मछलियां मारते मिलेंगे। कई तरह की मछलियां हैं, कई तर ह के बोर्ड हैं, कई तरह के आदमी हैं। लेकिन जहां निषेध है, वहां निमंत्रण है। व ह आदमी मछली मार रहा है। एक आदमी पीछे से आकर खड़ा हो जाता है और

उसे आदमी से पूछता है कि भाई जान, कितनी मछलियां मारीं? वह पास में पड़े हुए एक झोले की तरफ इशारा मरता है। झोला भर गया है। बहुत बड़ी-बड़ी मछलियां मारी हैं। वह आदमी कहता है कि शायद आपको पता नहीं कि मैं कौन हूं। वह मछली मारने वाला कहता है, कौन हैं आप? वह आदमी कहता है कि मैं इस झील का निरीक्षक हूं। यहां मछलियां मारना मना है। मैं सबसे बड़ा अधिकारी हूं इस झील का। तख्ती देखते हैं पीछे। वह आदमी कहता है, तख्ती देखने की कोई जरूरत नहीं। आपको पता है कि मैं कौन हूं? वह निरीक्षक कहता है, आप कौन है? वह आदमी कहता है, मैं इस झीन के आस-पास रहने वाला सबसे बड़ा झूठ बोलने वाला हूं। वह झोला खाली है। उसमें कोई मछली वगैरह नहीं है। वह आदमी कहता है, फिर काहें कि लिए यह ढोंग कर रहे हो? झोला खाली है, उसको भरा बताते हो? धागा जो लटकाया है, उसमें कोई नीचे भोजन नहीं। बस मछली के लिए धागा ही लटकाए है। धागा उचका कर वह दिखाता है। फिर काहे के लिए ढोंग कर रहे हो? वह आदमी कहता है, कुछ मित्र आने वाले हैं, उनको मैं दिखाना चाहता हूं कि मैं भी मछली मारने वाला हूं। साधारण नहीं हूं। मैं भी कुछ हूं। वह आदमी कहता है, इससे क्या फायदा? वह मछली मारने वाला कहता है, अगर इससे फायदा नहीं तो दुनिया की सब दौड़ व्यर्थ है। क्योंकि सब दौड़ एक ही बात दिखाना चाहती हैं कि मैं कुछ हूं। और वह आदमी ठीक कहता है। वह उस झील के आस-पास झूठ बोलने वाला सबसे बड़ा है। और जो आदमी भी यह दिखाने की कोशिश में लगा है कि मैं कुछ हूं, वह चाहे कहीं भी रहता हो उसी झील के आस-पास वह भी एक बहुत बड़े झूठ को सम्हालने में लगा है। अहंकार से बड़ी कोई झूठ नहीं है, और अहंकार के लिए हम सारी खोज कर रहे हैं--एक तो यह खोज है। और जिस आदमी को यह दिखाई पड़ जाता है कि अहंकार तो एक झूठ है। मैं हूं लेकिन क्या हूं? यही मुझे पता नहीं। मैं यह हूं, वह हूं, यह दिखाने की कोशिश में लगकर कहीं भटक तो नहीं जाऊंगा? पहले यह तो जान लूं कि मैं कौन हूं? फिर मैं कहूं कि मैं यह हूं--समबडी होने के पहले, कुछ होने के पहले यह तो जान लूं कि क्या हूं। और मजे की बात है, जो यह जानने जाते हैं कि वे क्या हैं वे खो जाते हैं। और उससे एक हो जाते हैं जो सब है। और जो इस यात्रा पर जाते हैं बताने के लिए कि मैं यह हूं--धन से, ज्ञान से, यश से, पांडित्य से, त्याग से, जो यह दिखाने की कोशिश करते हैं कि मैं कुछ हूं वे सिकुड़ते चले जाते हैं। दीवार चारों तरफ बनती चली जाती है। एक इगो, एक अहंकार मजबूत हो जाता है। वही अहंकार कांटे की तरह चुभता है। दुःख देता है, पीड़ा देता है, कष्ट देता है। फिर जब वह आदमी पूछता है कि शांति के लिए क्या करूं, बड़ा मन अशांत है। अगर मन अशांत हो तो जाना कि अहंकार किया हो मजबूत। इसलिए मन अशांत है। फिर वह आदमी कहता है, बहुत दुःखी हूं, आनंद पाने के लिए क्या करूं? अगर दुःख हो तो जानना कि अहंकार के अतिरिक्त और कोई दुःख नहीं है। अहंकार किया है मजबूत और अब वह आदमी पूछता है आनंद कहां पाऊं? और वह अ

ादमी कहता है कि बड़े अज्ञान में भटक रहा हूं। ज्ञान चाहिए। लेकिन उससे खयाल से पूछना— अज्ञान—अहंकार के सिवाय और क्या है? और अगर अहंकार है तो अ ज्ञान नहीं मिट सकता है।

एक मित्र ने पूछा है कि सुकरात कहता है कि मैं जानता हूं कि मैं नहीं जानता। इसका क्या अर्थ है।

इसका इतना ही अर्थ है कि सुकरात यह कह रहा है कि यह भी अहंकार है कि मैं जानता हूं, अज्ञान का सबूत है। यह भी अहंकार कि मैं जानता हूं, मैंने जान लि या, मैंने पा लिया, यह जो मैं पर जोर है, वह अहंकार है। अहंकार है तो खतरा है। जो जानता है, वह कहेगा, जानता हूं लेकिन मैं कहा हूं। वह अहंकार कहां है, वह इगो कहां है? इसका यह मतलब नहीं है कि मैं मिट जाएगा, तो आप मिट जाओगे। मैं मिटा तभी आप पूरे अर्थों में आप हो पाते हो। लेकिन तब वह आप ब हुत बड़ा आप हो जाता है, उसमें सब समा जाता है। अहंकार की खोज चल रही है सब तरफ। एक आदमी धन इकट्ठा करता है, धन के ऊपर खड़ा होता चना जा ता है। क्यों? यह ढेर किसलिए है? चारों तरफ के लोगों से ऊपर उठकर दिखला ना चाहता है कि मैं तुमसे ऊपर हूं। छोटे बच्चों जैसी बुद्धि होगी। छोटा सा बच्चा अपने बाप के पास कुर्सी पर खड़ा होता है और कहता है, देखते हैं पिताजी, मैं आपसे बड़ा हो गया हूं। पिता हंसता है, वह कहता है, ठीक है। जरूर, कुर्सी पर खड़े हो गए हो। बड़े हो गए हो। तो आदमी धन की कुर्सी बनाता है, ग्रंथों की कु र्सी बनाता है और उस पर खड़ा हो जाता है और चिल्लाकर कहता है कि मैं बड़ा हो गया हूं।

मैंने सुना है, डा. पट्टाभि सीतारमैया ने संस्मरण लिखा है, कि मद्रास में एक मजिस्ट्रेट था, और मजिस्ट्रेट बिलकुल पागल था। और पागलपन क्या था? यही जो हम सबका पागलपन है। पागलपन यह था कि उसने अदालत में एक ही कुर्सी रख छो. डी थी खुद के बैठने के लिए। दूसरी कुर्सियां न थीं। अंदर रखवा दी थीं कुर्सियां उ सने। सात नंबर तक की कुर्सियां, थीं। एक नंबर की शानदार कुर्सी थी। सात नंबर की एक मूढ़ था—गरीब। और आठवें नंबर के आदमी आते थे तो खड़े-खड़े उनसे बात कर लेता था। आदमी देखकर कुर्सी बुलवाता था। एक दिन एक बूढ़ा आकर खड़ा हुआ, लकड़ी टेकता हुआ। उसने सोचा, बिना कुर्सी के चल जाएगा। लेकिन तभी बूढ़े ने बाह खींची, घड़ी देखी। घड़ी कीमती है। मजिस्ट्रेट ने अपने नौकर को कहा, जल्दी जा, नंबर तीन की कुर्सी ले आ। वह भीतर से नंबर तीन की कुर्सी ज ब तक ला पाया तब तक उस बूढ़े ने कहा, शायद आप मुझे पहचानते नहीं—मैं रा यबहादुर, फलां-फलां गांव का—भूल गए। मजिस्ट्रेट चिल्लाया—ठहर! चपरासी! नंबर दो की कुर्सी ला। चपरासी बीच से वापस लौट गया। उसने कहा, नहीं शायद आ प पहचान नहीं पाए। मैंने पिछले महायुद्ध में सरकार को दस लाख रुपए दान दिए थे। तब तक चपरासी फिर चला आ रहा है नंबर दो की कुर्सी लेकर। वह मजिस्ट्रेट चिल्लाया, ठहर! नंबर एक की लेकर आ। वह बूढ़ा बोला, मैं खड़े-खड़े थक ग

या। आखिरी जो नंबर हो वही बुला लें, क्योंकि अभी और बातें मुझे बतानी हैं। अ भी मुझे पहचानने में थोड़ा वक्त और लग जाएगा। लेकिन यही हमारी पहचान है। यही बूढ़ा अगर न कहे कि रायबहादूर हूं, दस लाख दिए थे। घड़ी न हो कीमती, तो खत्म हो गया। क्या आदमी इतना ही है? इतनी ही चीजों का जोड़? कपड़े, रायबहादूर, पदमश्री। बस, इन्हीं का जोड़ है? कोट, कमीज, पगड़ी, इन्हीं का जोड़ है आदमी? धन, जो खीसे में है--किताबें जो खोपड़ी में हैं--त्याग, जो स्मृति में है --इन्हीं का जोड़ है आदमी? बस, यहां काफी है? इतना जान लेने से जानना हो जाएगा? खोज पूरी हो जाएगी? अधिक लोग इतने की ही खोज में व्यस्त है। और जो इतने की खोज से व्यस्त है वह अभी कपड़े खोज रहा है। और जो कपड़े खो ज रहा है वह समय खो रहा है। खोजना उसे है जो अंतस में है। जो आंतरिक है। जो आत्मा है। और हम सब कपड़े खोज रहे हैं। तो वह मित्र पूछते हैं, खोजें क्यों ईश्वर को? वह मित्र यह पूछते हैं कि कपड़े ही क्यों न खोजते रहें? क्यों खोजें आत्मा को? मन खोजें, मर्जी आपकी। लेकिन कपड़े खोज-खोज कर परेशान हो जा एंगे। कपड़ों का ढेर इकट्ठा हो जाएगा। आप कपड़ों में ही खो जाएंगे और दब जाएं गे। और आप! आप कपड़े नहीं हैं।

गालिब को एक दफा, बहादुरशाह ने बुलाया है। निमंत्रण दिया है, भोजन के लिए आ जाओ। कवि है, गरीब आदमी है। फटे-पुराने पहनकर चलने लगा। मित्रों ने क हा, यह पहनकर मत जाओ। राजा के दरवाजे पर ये कपड़े नहीं पहचाने जाते। गा लिब ने कहा, मुझे बुलाया है कि मेरे कपड़ों को? नासमझ रहा होगा। दुनिया में कपड़े ही बुलाए जाते हैं, पहचाने जाते हैं। आदमी--आदमी को बुलाने को वक्त क हां, आया अभी तक? समय कहां आया वह? गालिब नहीं माना। कुछ लोग जिद्दी होते हैं, नहीं मानते। मित्रों ने बहुत कहा, हम उधार कपड़े ले आते हैं। गालिब ने कहा, उधार कपड़े--क्या उचित होगा? उससे तो फटे-पुराने अपने ही बेहतर--क म से कम अपने तो है। कोई यह तो नहीं कह सकता कि उधार हैं। उन्होंने कहा, पागल हुए हो, कौन पहचानता है कि उधार है कि अपना है। इस दुनिया में सब उधार चल रहा है। उधार ज्ञान से आदमी ज्ञानी हो जाता है। तुम उधार कपड़ों क ी फिकर करते हो? गालिब नहीं माना। गालिब ने कहा, नहीं, जो अपना है वही ठीक है। गरीब भी, भी अपना ही तो है। फिर कपड़े की क्या फिकर! मैं हूं। मैं तो वही रहूंगा। कपड़े कोई भी हों। मित्रों ने कहा, यह सब तुम नासमझी की बातें कर रहे हो। आदमी कपड़े से बदल जाते हैं। कपड़े जैसे हैं वैसा आदमी हो जाता है। नहीं माना गालिब, चला गया। दरवाजे पर जाकर जब भीतर जाने लगा द्वार पर खड़े द्वारपाल ने एक धक्का दिया और कहा, कहां भीतर जा रहे हो? यह को ई धर्मशाला है? कहां घुस रहे हो? गालिब ने कहा, मुझे बुलाया गया है। सम्राट मेरे मित्र हैं। उन्होंने निमंत्रण भेजा है। उस सिपाही ने कहा, हद हो गयी। हर कि सी भिखमंगे को सम्राट से दोस्ती का खाल हो जाता है। रास्ते पर चलो, अन्यथा उ ठाकर बंद करवा दूंगा। गालिब को तब मित्र याद आए कि गलती हो गयी। शायद

कपड़े ही पहचाने जाते हैं। गालिब वापस लौट आया। मित्रों से कहा, क्षमा मांगता हूं, भूल हो गई। कपड़े ले आओ। मित्र तो उधार कपड़े ले आए। जूते उधार हैं, पगड़ी उधार है, कोट उधार है, सब उधार है। उधार आदमी बड़ा जंचता है। गालिब खूब जंचने लगे। सड़क पर हर दुकानदार झुक-झुककर नमस्कार करने लगा। आदमी की यह जात, या आदमियत अब तक उधार ही को नमस्कार करती रही है। यही गालिब थोड़ी देर पहले इसी रास्ते से निकला था। किसी ने नमस्कार नहीं किया था। रास्ता वही है,लोग वही है, गालिब वही है, कपड़े बदल गए, सब बदल गया। गालिब तो हैरान हो गया। यह सत्य कभी न जाना था कि कपड़ों में इतना सत्य है। द्वारपाल के पास पहुंचा है। द्वारपाल ने झुककर नमस्कार किया, और कहा कि कहां पहुंचाऊं? कैसे आए महाराज? गालिब ने गौर से उसे देखा लेकिन द्वारपाल नहीं पहचानता। आंख है, आंखों में कौन झांकता है? कपड़ों में देखने से फुर्सत मिले कि कोई आंखों में झांके। आदमी कौन देखता है? कपड़ों से आंख हटे तो कोई आदमी को देखे और जिनके भीतर आदमी कभी नहीं होता वे चौबीस घंटे कपड़ों की फिकर में होते हैं। कोई गेरुवा कपड़े रंगे हुए खड़ा है। आदमी भीतर बिलकुल नहीं है। कोई और तरह के कपड़े रंगे हुए खड़ा है। आदमी भीतर बिलकुल नहीं है। कोई गहने पहने खड़ा है। कोई स्त्री सजी-धजी खड़ी है। आदमी भीतर बिलकुल नहीं है। जब तक यह साज-बाज बहुत जोर से चलेगा ऊपर, तो जानना कि भीतर कोई कमी है, जिसे ऊपर से दिखाया जा रहा है। लेकिन यही दुनिया है, यही पहचाना जाता है। गालिब भीतर पहुंचा दिए गए। सम्राट ने कहा, बड़ी देर से राह देखता हूं। गालिब करे भोजन पर बिठाया। उठाकर भोजन गालिब अपनी पगड़ी को कहने लगा, कि ले पगड़ी खा—ले कोट खा। सम्राट ने कहा, क्या करते हैं आप? आपके खाने की बड़ी अजीब आदत मालूम होती है। गालिब ने कहा, अजीब आदत नहीं महाराज। मैं तो पहले आया था, अब नहीं आया हूं। अब नहीं आया हूं। अब कपड़े ही आए हैं। मैं तो आकर जा भी चुका। और अब कभी न आऊंगा। क्योंकि जहां पकड़े पहचाने जाते हैं वहां अपनी क्या जरूरत है? अब तो कपडे ही आए हैं। अब तो कपड़ों को भोजन करा दूं और वापस लौट जाऊं।

यह हम जिस जिंदगी की दौड़ के दौड़ समझ रहे हैं, खोज को खोज समझ रहे हैं, यात्रा समझ रहे हैं। यह कपड़ों से ज्यादा हैं क्या? हम क्या खोज रहे हैं? इस सबको खोजकर भी क्या हम उसे पा लेंगे जो हम हैं? और फिर आप पूछते हैं, क्यों खोजें ईश्वर को? ईश्वर की खोज का मतलब क्या है? ईश्वर की खोज का मतलब है, उसकी खोज, जो है। और संसार की खोज का मतलब है, उसकी खोज—जो नहीं है। संसार की खोज का मतलब है—असत्य की खोज। प्रभु के मंदिर की खोज का अर्थ है सत्य की खोज। और असत्य का केंद्र है अहंकार। संसार का केंद्र है अहंकार। और प्रभु को जो खोजने जाता है। वह अपने को खोता है। धीरे-धीरे खोता है,

मैंने कल कहा, विश्वास खोदो। आज कहा, विचार भी खो दो। कल कुछ और खो ने को कहूंगा। परसों कुछ और। एक घड़ी ऐसी आती है कि जो भी नानएसेंशियल है, जो भी ऊपर से जड़ा है, जो भी वस्त्र है, वे सब खो दो। रह जाने दो उसे, जो नहीं खोया जा सकता। और जिस दिन सिर्फ वही बच जाता है जिसे खोना असं भव है उसी दिन क्रांति घटित हो जाती है। प्रभु मंदिर का द्वार खुल जाता है। मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना उसके लिए मैं बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं।

मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

दिनांक ९ जून, १९६९ रात्रि

४ ध्यान है द्वार

संदेह पूर्ण हो तो संदेह से मुक्ति हो जाती है। विचार पूर्ण हो तो विचार से भी मुक्ति हो जाती है। असल में जो भी पूर्ण हो जाए उससे ही मुक्ति हो जाती है। सिर्फ अधूरा बांधता है। अर्द्ध बांधता है। पूर्ण कभी भी नहीं बांधता है। लेकिन संदेह पूर्ण नहीं हो पाता और विचार भी पूर्ण नहीं हो पाता। जो संदेह भी करते हैं वे भी पूरा संदेह नहीं करते हैं। जो संदेह करते हुए मालूम होते हैं,उनकी भी आस्थाएं हैं। उनकी भी श्रद्धाएं है। उनका भी अंधापन है। और जो विचार करते हैं वे भी पूरा विचार नहीं करते। वे भी कुछ चीजों का बिना विचारे ही स्वीकार कर लेते हैं। संदेह वाला भी विचार को बिना विचारे स्वीकार कर लेता है। यदि कोई पूर्ण संदेह करेगा तो अंततः संदेह के ऊपर भी संदेह आ जाएगा। और यह सवाल उठेगा कि मैं संदेह भी क्यों करूं? और यह भी सवाल उठेगा--क्या संदेह से कुछ मिल सकता है? जो विचार पूर्ण करेगा, अंततः उसे यह भी ज्ञात होगा कि क्या विचार से उसे जाना जा सकता है, जिसे मैं नहीं जानता हूं? और क्या विचार से जो जाना जाएगा वह सत्य होगा ही? इस संबंध में कल थोड़ी सी बातें सुबह मैंने कहीं--

विचार की प्रक्रिया प्रभु मंदिर के मार्ग पर एक सीमा तक लाकर छोड़ देती है। और जो विचार में ही रुक जाता है वह दर्शन में भटक जाता है--फिलासफी में--लेकिन धर्म तक नहीं पहुंच पाता है। जो विश्वास पर रुकता है वह अंधविश्वासों में भटक जाता है--सुपरस्टीशन में। जो विचार पर रुकता है वह फिलासफीज में--विचारधाराओं में, भटक जाता है। लेकिन जो विचार से भी आगे चलता है वह वहां पहुंचता है जहां धर्म का मंदिर है। विचार के संबंध में थोड़ी और बात समझ लेनी उचित है ताकि हम विचार से ऊपर उठने की बात समझ सकें।

पहली बात तो यह है कि कोई भी विचार कभी मौलिक नहीं होता है। ओरिजनल विचार जैसी कोई चीज नहीं होती। सब विचार बासे, सांयोगिक होते हैं। विचार भी सीखे हुए होते हैं। इसलिए विचार के द्वारा हम वही जान सकते हैं जो हम जानते ही हों। जो हम नहीं जानते हो--जो अननोन हों--अज्ञात हों, वह विचार के द्वारा नहीं जाना जा सकता। सच तो यह है जो ज्ञात नहीं है, उसका विचार भी नहीं किया जा सकता। हम उसका विचार भी कैसे करेंगे जो ज्ञात नहीं। जो हम ज्ञात

है, हम उसका विचार कर सकते हैं—पक्ष में—विपक्ष में सोच सकते हैं, लेकिन जो हमें ज्ञात ही नहीं है वह हमारे विचार का विषय कैसे बनेगा? हम उसे सोचेंगे कैसे ? हम उसका चिंतन कैसे करेंगे, उसका मनन कैसे करेंगे? आता विचार के बाहर है और परमात्मा अज्ञात है—अननोन है। इसलिए विचार कोई परमात्मा को कभी नहीं जान सकता है।

दूसरी बात मैंने कही, विचार भी उधार है, वह भी बारोड है। हजार तरफ से विचार की धाराएं हमारे मस्तिष्क की तरफ दौड़ती है। उन विचारों का एक मेल—ताल-मेल भीतर बैठ जाता है। हो सकता है, ताल-मेल बिलकुल नया मालूम पड़े। लेकिन फिर भी, बहुत से विचारों का संकट ही होगा। जैसे एक आदमी कहे कि मैंने एक नया विचार किया है, मैंने एक ऐसे सोने के घोड़े को सोचा है जिसके पंख हैं, और वह आकाश में उड़ता है। निश्चित ही, सोने का घोड़ा पंखों वाला, आकाश में उड़ता हुआ कभी नहीं हुआ है। यह विचार बड़ा मौलिक मालूम होता है। लेकिन यह जरा भी मौलिक नहीं है। घोड़े हम जानते हैं। सोना हम जानते हैं। पंख हम जानते हैं। उड़ना हमने देखा है। इन चार को जोड़ ?कर हम एक सोने का उड़ने वाला घोड़ा बना लेते हैं। इसमें कुछ भी नया नहीं है। इसमें चार पुरानी चीजों को तोड़-मरोड़कर इकट्ठा कर लिया गया है। नए विचार दिखाई ही पड़ते हैं कि नए हैं। नया विचार नहीं होता है। नया तो निर्विकार ही होता है। मौलिक विचार नहीं होता है। ओरिजनल विचार नहीं होता। ओरिजनल मौलिक अनुभूति तो निर्विचार ही होती है। विचार बासा है। उधार है। दूसरों से आया हुआ है। फिर विचार की सामर्थ्य स्मृति से ज्यादा गहरी नहीं है। वह हमारे प्राणों तक प्रवेश नहीं करता है। हमारी मेमोरी के पर्दे तक जाता है। आगे नहीं जाता।

मेरे एक मित्र डाक्टर है। ट्रेन से गिर पड़े। चोट खा गयी स्मृति उनकी। वह सब भूल गए जो जानते थे। डाक्टरी सीखी थी वह सब भूल गए। डाक्टरी तो दूर की बात हैं, अपना नाम भूल गए। अपने पिता को भूल गए। दो ही दिन बाद, मैं उन्हें देखने गया। बचपन से मेरे साथ पढ़े थे—खेले थे—लड़े थे—झगड़े थे। वे मुझे भी भूल गए। वह मेरी तरफ ऐसे देखने लगे जैसे किसी अजनबी और अपरिचित ने भी कभी नहीं देखा होगा। और वह कहने लगे—कौन है आप—और कैसे आए है? और अपने आसपास के लोगों से पूछने लगे, ये कौन हैं? और उनकी आंखों में कोई स्मरण नहीं है। वह जो स्मृति थी वह खो गयी—वह टूट गयी। वह जो टेपरेकाडिंग थी स्मृति की वह एकदम से टूट गयी। वह विस्मरण हो गया और उससे संबंध टूट गया। वह तो हैं। उनकी चेतना है। उनका प्राण है। उसका सब कुछ है। लेकिन स्मृति नहीं है। तो विचार गए। स्मृति की गहराई ही हमारे विचार की गहराई है। विचार प्राणों तक प्रवेश नहीं करता। विचार अस्तित्व तक नहीं जाता। विचार एक्जिस्टेंस तक, बीइंग तक नहीं पहुंचता। विचार सत्य तक नहीं पहुंचता। हमारे प्राणों से आस-पास जो स्मृति का, मेमोरी का यंत्र है, उस तक पहुंचता है। बस उससे गहरी

उसकी कोई पहुंच नहीं है। हम कितना ही विचारे, विचार स्मृति से गहरे नहीं जा ता। स्मृति का सत्य से क्या संबंध है।

स्मृति का सत्य से क्या संबंध है?

सत्य तो बहुत गहरे है। स्मृति तो बहुत ऊपर है। जैसे कोई सागर की सतह पर लहरें हैं। सागर की गहराइयों से लहरों का क्या संबंध है? लहर को पता भी नहीं कि सागर की गहराई क्या है? लहरें तो ऊपर हैं, हवाओं के झोंको से उठती है, मिटती रहती हैं। स्मृति भी ऊपर है चेतना की, ऊपर की सतह है। बाहर की ह वाओं के झोंकें लगते हैं, घटनाएं घटती हैं। अनुभव होते हैं। शब्द सुने जाते हैं। या द किए जाते हैं, ज्ञान होता है। सारा अनुभव होता है। बाहर की हवाओं से झोंके लगते हैं। चेतना की ऊपर की पर्त पर स्मृति निर्मित होती है। स्मृति बाहर के झों कों की प्रतिक्रिया से पैदा होती है। इस स्मृति को कोई भी पता नहीं है कि गहरे में, सागर में कौन है? इस स्मृति का, इस गहरे सागर से कोई भी संबंध नहीं जुड़ पाता। इस स्मृति का संबंध बाहर के संसार से जुड़ता है। स्वयं से गहरे में स्मृति को कोई भी पता नहीं है।

तो अगर कोई विचार पर ही अटकेगा तो स्मृति पर ही अटक जाएगा। और गहरे नहीं जा सकता। हम, हमारा होना और भी गहरा है। फिर यह भी ध्यान रहे कि ि वचार क्या है? सिवाय शब्दों के जोड़ के और क्या है? सिवाय शब्द के जोड़ के ि वचार और क्या है? और शब्द मग सत्य है, तब तो सभी को सत्य मिल गया हो ता। एक आदमी—एक आदमी पढ़ता है, सुनता है, समझता है, विचारता है, कहत ा है ब्रह्म ही सत्य है। शब्द उसने सीख लिया। ब्रह्म सत्य है, सीख लिया। स्मृति में बैठ गया। वह दोहराता; है—ब्रह्म ही सत्य है—जगत माया है। ब्रह्म ही सत्य है—ज गत माया है। वह दोहराता चला जाता है—दोहराता चला जाता है। स्मृति मजबूत होती चली जाती है। और ऐसा प्रतीत करने लगता है—जगत असत्य है—ब्रह्म सत्य है। लेकिन, यह कोई अनुभव नहीं है। यह कोई सत्य नहीं है। यह शब्द की पुनरु क्त से पैदा हुआ आभास है। कोई भी सत्य की पुनरुक्ति करो, उसका आभास पैदा हो जाता है, उसका अलजन पैदा हो जाता है।

तब हम कैसे जाने सत्य को? कैसे हम प्रभु मंदिर में प्रविष्ट हों। द्वार तक लाकर ि वचार छोड़ता है। जो विचार पर ही रुक जाते हैं, वे बहुत आगे नहीं गए। गए थो. डा और रुक गए। विचार पर्याप्त नहीं है, नाट इनफ। कुछ और आगे जाना पड़ेगा। और उस आगे जाने से विचार छूटेगा तो ही आगे जाया जा सकता है। आदमी स ीढ़ियों पर चढ़ता है, एक सीढ़ी पर पैर रखता है। आगे की सीढ़ी पर पैर रखता ह ो तो पिछली सीढ़ी छोड़ देनी पड़ती है। थोड़ी देर पहले उसने उस पर पैर रखा था । अब छोड़ना पड़ता है। आगे की सीढ़ी पकड़नी है तो पिछली सीढ़ी छोड़ देनी पड़ ती है। विचार की सीढ़ी पर रखा हुआ पैर उठा लेना पड़ेगा तो जो सीढ़ी आएगी उसका नाम ध्यान है। ध्यान अवस्था अर्थ है, निर्विचार। ध्यान का अर्थ है चित्त की समग्र मौन अवस्था। चित्त में टोटल साइलेंट—ऐसा मौन, जहां शब्द नहीं—जहां वि

चार नहीं—जहां तक नहीं—जहां सिर्फ देखना है। जहां सिर्फ दर्शन है। जहां सिर्फ देखने कि शुद्ध अनुभूति है। ध्यान का अर्थ है, निर्विचार में प्रवेश। लेकिन ध्यान के नाम से और न मालूम क्या-क्या प्रचलित है जो ध्यान नहीं है। पहले हम समझ ले कि ध्यान क्या नहीं है तो समझना बहुत आसान होगा कि ध्यान क्या है?

ध्यान तीसरा सूत्र है। ध्यान प्रभु मंदिर में जहां विचार छोड़ता है उससे आगे ले जाता है। विचार द्वार पर छोड़ देना है। ध्यान द्वार के भीतर ले जाता है। ध्यान क्या नहीं है, यह समझ लेना इसलिए जरूरी है कि ध्यान के नाम से बहुत झूठे ध्यान प्रचलित हैं। बहुत सूडो मेडिटेशन प्रचलित हैं। पहली बात, ध्यान के नाम से एकाग्रता, कंसट्रेशन प्रचलित है, जो ध्यान नहीं है। साधारणतः समझा जाता है—एकाग्र हो जाना ध्यान है। एकाग्र हो जाना भी विचार की अवस्था है—ध्यान की नहीं। किसी एक विचार पर अगर कोई एकाग्र हो जाए तो वह ध्यान की अवस्था नहीं है। वह विचार की चंचल अवस्था होती है और विचार की एकाग्र अवस्था होती है जो विचार की ही अवस्था है। कोई आदमी राम पर चित्त को एकाध कर ले, कोई कृष्ण पर, कोई क्राइस्ट पर, कोई अल्लाह पर, कोई किसी और पर कोई ओम पर, कोई किसी और पर। कोई व्यक्ति किसी एक शब्द और विचार पर अपने चित्त को एकाग्र कर ले, तो भी यह ध्यान नहीं है। तो भी यह एक विचार के आस-पास घूमता हुआ चित्त है। विचार मौजूद है—और जहां विचार मौजूद है वहां ध्यान नहीं है। हां, विचार पर अगर एकाग्र किया जाए तो कुछ परिणाम होंगे। पहला परिणाम यह होगा, अगर एक ही विचार रह जाए चित्त में, तो चित्त तत्काल तंद्रा से, सम्मोहन से बेहोशी में, चला जाता है। असल में चित्त की आकांक्षा नित नए की है। प्रतिक्षण नए की है। चित्त का स्वभाव चंचलता है। वह बदलता रहे तो सुखद रहता है। अगर बिना बदली कोई चीज रह जाए तो चित्त ऊब जाता है। बोर्डम से भर जाता है। घबड़ा जाता है। घबड़ाकर सो जाता है।

आपने आज जाकर एक फिल्म देखी। कल फिर आपको वहीं फिल्म देखनी पड़े। आज बहुत अच्छी लगी। कल आप कहेंगे—ठीक है। परसों फिर आपको देखना पड़े तो आप कहेंगे, कृपा करें, अब मैं नहीं जाना चाहता। फिर और आपको देखना पड़े तो आप घबड़ा जाएंगे और एक कानून लगा दिया जाए कि अब आपको जीवन भर देखती ही पड़ेगी तो आप पागल हो जाएंगे। या विद्रोह कर देंगे कि यह मैं नहीं देखना चाहता हूं। एक ही चीज चित्त को बेचैन करती है। उबाती है। बोर करती है। घबराती है। घबराने पर एक ही रास्ता रह जाता है चित्त के सामने, ताकि वह सो जाए, ताकि वह जो एक अटका है, वह भूल जाए। एक मां अपने बच्चे को सुलाती है तो कहती है, राजा बेटा सो जा। राजा बेटा सो जा। राजा बेटा सो जाता है। मां सोचती है, शायद बहुत मधुर संगीत की वजह से सो गया तो गलत सोचती है। राजा बेटा सिर्फ ऊब गए हैं। घबरा गए हैं। उनसे कह रहे हो, राजा बेटा सो जा। राजा बेटा सो जा। वह बोर्डम से भर गए। राजा बेटा क्या, राजा बेटा के बाप के साथ यह दुर्व्यवहार किया जाए—वह भी सो जाएंगे। यह दुर्व्यवहार है।

उसको उबाया जा रहा है। वही एक शब्द। वही एक ध्वनि। एक ही मोनोटोनस, ए
क रस आवाज में कही जा रही है, नींद पैदा करती है। धार्मिक सभाओं में लोग
अकारण नहीं सोते। वही बात हजार दफे सुन ली। वही बात फिर कही जा रही है
। सब सुनने को भी कुछ नहीं है। लोग सो रहे हैं। कुछ डाक्टर तो यह कहते हैं ि
क जिन लोगों को नींद न आती हो उनको धार्मिक सभा में जाना चाहिए। नींद की
दवाएं भी जिन पर काम नहीं करती उन पर भी राम और कृष्ण की कथाएं काम
कर जाती हैं। वे इतनी दफे सुनी गयी हैं कि अब सिवाय सोने के कुछ उपाय नह
ीं। वह इतनी परिचित है कि अब उबाने वाली हो गयी है। चित्त नए के प्रति जाग
ता है। पुराने के प्रति सो जाता है। पुनरुक्त के प्रति सो जाता है। नए के प्रति थो.
डी देर जागता है। सिर्फ पुनरुक्त के प्रति सो जाता है। नया जैसी ही पुराना पड़ा--
चित्त सोने लगता है! चित्त को सुलाने की तरकीब है--किसी एक ही चीज पर पुन
रुक्ति पूर्वक उसे रोक लेना। एक आदमी बैठकर कहता रहे--राम-राम-राम, ओम-
ओम-ओम, ये शब्द चुन ले और कहता रहे। कहता ही चला जाए। घबरा जाएगा।
फिर तंद्रा पकड़ लेगी, फिर चित्त खो जाएगा। चित्त निद्रा मग चला जाएगा। सम्म
ोहक का शास्त्र कहता है, हिप्नोटिज्म कहता है, कोई भी एक चीज को पुनरुक्त क
रो--तुम बेहोश हो सकते हो। पुनरुक्ति बेहोशी लाने की दवा है। किसी भी चीज क
ो तीव्रता से दोहराते चले जाओ और तुम सो जाओगे। चित्त अचेतन हो जाएगा,
चेतन अचेतन में लीन हो जाएगा।

हजारों साल से पुनरुक्ति और एकाग्रता को ध्यान समझा जा रहा है। पुनरुक्ति औ
र एकाग्रता सम्मोहन है। हिप्नोटिक स्लीप है--ध्यान नहीं। इधर पश्चिम में महेश यो
गी और उस तरह के लोग जो बातें करते हैं वे सिर्फ सम्मोहन--तंद्रा की बातें हैं।
इनका ध्यान से कोई भी संबंध नहीं है। और पश्चिम में इस तरह की बातों का ज
ो प्रभाव पड़ता है उसका कारण कुल इतना है, कि पश्चिम नींद की कमी से बेचैन
और परेशान है। पश्चिम में नींद उखड़ गयी है, तनाव बहुत ज्यादा है। टेंशन बहु
त है। चिंता बहुत है। आदमी सुबह से सांई तक इस तरह तना हुआ है कि रात
नींद भी नहीं आती। नींद लाने की दवा चाहिए। कोई ट्रेंकोलाइजर चाहिए। लोग द
वाएं ले रहे हैं। ट्रेंकोलाइजर ले रहे हैं। लेकिन ट्रेंकोलाइजर भी थोड़े दिन तक काम
करता है--फिर वह भी खत्म हो जाता है। तो पश्चिम में जो नए-नए एकाग्रता
के प्रभाव चल रहे हैं उसका और कोई कारण नहीं--उसका कुल कारण इतना है,
कि यह मंत्र जाप से भी नींद आने में सुविधा होती है। मंत्र जाप भी निद्रा लाता है
। इतना फायदा है। लेकिन निद्रा ध्यान नहीं है। तो एक तो पहली बात यह खयाल
में ले लें कि कि एकाग्रता--कंसंट्रेशन, ध्यान या मेडिटेशन नहीं है। एकाग्रता बात
ही और है। ध्यान बात ही और है। एकाग्रता का अर्थ है एक विचार की पुनरुक्ति,
ध्यान का अर्थ है निर्विचार। विचार की पुनरुक्ति नहीं।

समझ लें, एक छोटा बच्चा है और एक कमरे में सौ पेटियां रखी हुई है। वह छोटा
बच्चा एक पेटी से दूसरी पेटी पर, दूसरी से तीसरी पेटी पर कूदता है। तीसरी च

ौथी पर, चौथी से पांचवीं पर कूदता है। पेटी बदल जाती है। बच्चा कूदता चला जाता है। खेल खेलता है। फिर हमने निन्यानबे पेटियां अलग कर दीं, एक ही पेटी बची है। अब वह बच्चा एक ही पेटी पर जंप करता है। कूदता है। खेल अब भी जारी है, पर एक ही पेटी पर कूद रहा है। फिर हमने पेटी भी हटा दी। अब कूदने को कुछ भी न बचा। अब वह बच्चा बैठा गया हैं। अब कूदने को कुछ भी नहीं है। न एक है। न सौ है। चित्त की तीन अवस्थाएं है। एक अवस्था है। चंचल चित्त की। एक विचार से दूसरा विचार, दूसरे से तीसरा, तीसरे से चौथा, चित्त की सामान्य स्थिति है। फिर इसे रोक लो, सव विचार अलग कर लो, एक पर बचाओ। एक पर चित्त कूदता है। एक पर ही कूदता है। कूदने का काम जारी है। एक अभी भी है। एक पर ही कूदता है। कूदने का काम जारी है। एक अभी भी शेष है। फिर एक को भी हटा दो। अब कूदने को शेष नहीं रहा, कूदने की जगह नहीं रही। चित्त बैठ गया। शांत हो गया। मौन हो गया।

पहली अवस्था चंचलता की है। दूसरी अवस्था एकाग्रता की है। तीसरी अवस्था ध्यान की है। ध्यान का अर्थ है—जहां कोई आब्जेक्ट न रहा। चित्त में कोई विषय—कोई विचार—कुछ न रहा। चित्त परिपूर्ण मौन हो गया। शांत हो गया। एकाग्रता विचार की ही अवस्था है, ठहरे हुए विचार की। एक नदी भाग रही है। यह चंचल चित्त की अवस्था है। एक नदी ठहर गयी है। जम गयी है—तालाब बन गयी है। यह एकाग्रता की अवस्था है। एक नदी बची ही नहीं। धूप में सूरज में उड़ गयी है। सिर्फ खाली नदी का—रेत का पाट रह गया। नदी है ही नहीं। यह ध्यान की अवस्था है। ध्यान और एकाग्रता में फर्क किए बिना कोई समझ नहीं पाएगा ठीक से, कि ध्यान क्या है? और अधिक लोग एकाग्रता को ही ध्यान मान कर समय को नष्ट कर लेते हैं। वे सिर्फ तंद्रा में, निद्रा में अपने को सुलाते हैं। निश्चित ही नींद का भी मजा है। जीवन में दुःख है। तकलीफ है। परेशानी है। भूलने का मन होता है। एक आदमी शराब पी लेता है। झंझट के बाहर हो गया। जितनी देर शराब में होता है, उतनी देर न दुःख है, न पीड़ा है, न परेशानी है। पत्नी बीमार है—न बच्चे को दवा की जरूरत है, न नौकरी की तलाश है। सब खत्म हो गया। आदमी ने शराब पी ली है, वह निश्चित हो गया है। सोम रस से लेकर लीसार्जिक एसिड तक, वेद के ऋषियों से लेकर अमरीका के नवीनतम ऋषि अल्डुअस हक्सले तक, शराब की नयी-नयी तरकीबें आदमी खोजता रहा है। एक आदमी शराब पीता है तो हम कहते हैं कि बुरा करता है। क्यों—बुरा क्यों करता है? बुरा इसलिए करता है कि वह सिर्फ जीवन को भूलता है। जीवन को बदलता हनीं है। और क्या बुराई है? भूलने में जीवन बदलता हनीं है। वही बना रहता है। और जितनी देर हम भूल रहे, उतना समय व्यर्थ हो जाता है। उतने समय में जीवन के दुःख को बदला जा सकता है। एक आदमी मंदिर में भजन-कीर्तन करके सब भूल जाता है। एक आदमी तीन घंटे के लिए सिनेमा में बैठकर सब भूल जाता है। एक आदमी-ढोल-तास बजाकर जोर से नाचकर सब भूल जाता है। एक आदमी टेस्ट में भूल रहा है। एक

आदमी याद में भूल रहा है। एक आदमी एक कोने मग बैठकर राम-राम-राम ज
प कर भूल रहा है। एक आदमी शराब पीता है। एक आदमी मैस्कलीन लेता है।
मारिजुआना लेता है। अफीम लेना है। भांग-चरस-गांजा लेता है। ये सारे लोग भूल
ने की कोशिश कर रहे हैं। भूलने की कोशिश अलग-अलग है। अच्छी और बुरी भी
हो सकती है। लेकिन बुनियादी बात एक है कि जीवन में जो दुःख है, जो पीड़ा
है, जीवन में जो अंधेरा है, उसे ये भूलने की कोशिश कर रहे हैं। भूलने की कोशि
श से अंधेरा मिटता नहीं, अज्ञान टूटता नहीं दुःख नष्ट नहीं होता है। फिर भूलने
के बाहर आते हैं। फिर दुःख वही है। पीड़ा वहीं है। अज्ञान वहीं है।
ध्यान भूलने की कोशिश नहीं है। ध्यान जीवन को जानने की कोशिश है। जीवन के
सत्य को भूलने की कोशिश नहीं है। वह फार्गेटफूलनेस नहीं है। वह पूरी रिमेंबरिं
ग है। वह पूरी स्मृति है जीवन के सत्य की। उसका पुरा बोध है। तो ध्यान और
एकाग्रता में उल्टा संबंध है। एकाग्रता ध्यान नहीं है, और अगर एकाग्रता की कोि
शश में लगे हैं तो सिर्फ निद्रा में जाने की कोशिश में लगे हैं। उससे कहीं आप ध्या
न में—सत्य में—प्रभु के मंदिर में प्रविष्ट नहीं हो जाएंगे। लेकिन बहुत लोग नशे में
जाकर सोचते हैं कि भगवान के मंदिर में चले गए। और इसीलिए आज हजारों ि
कस्म के साध्रु-संत गांजा पीते हुए मिलते हैं। उसका कुल कारण इतना है, कि वह
सोचते हैं कि नशा वह भी है। इस नशे से और सहारा ले लो और जल्दी पहुंच
जाओ। नशे से कोई कहीं पहुंच नहीं सकता। किसी भी तरह के नशे से कोई भी न
हीं पहुंच सकता। जागकर पहुंचना होगा, होश से भर कर पहुंचना होगा। अवेयरने
स चाहिए, बेहोशी नहीं। तो ध्यान एकाग्रता नहीं है।
फिर ध्यान क्या है? ध्यान जागरूकता है। ध्यान है चित्त के समस्त विषयों के प्रति
पूरे रूप से जाग जाना। बहुत-बहुत विचार हैं मन में, और हम सोए हुए हैं।एक दि
न बुद्ध बोले रहे हैं और एक आदमी सामने बैठकर पैर का अंगूठा हिला रहा है।
बुद्ध अपना बोलना बंद कर देते हैं, और उस आदमी से कहते हैं कि मेरे मित्र! य
ह पैर का अंगूठा क्यों हिलता है?जैसे ही बुद्ध यह कहते हैं, उसके पैर का अंगूठा
हिलना बंद हो जाता है। अगर आप भी बैठे होते और पैर का अंगूठा हिलाते होते,
और बुद्ध कहते, आपके पैर का अंगूठा—सुनते ही बंद हो जाता। वह आदमी कह
ता है, मुझे पता नहीं। यों ही हिलता था। बुद्ध कहते हैं, अजीब, बात कहते हो।
तुम्हारा अंगूठा और तुम्हें पता नहीं? और यों ही हिलता है? अंगूठा तुम्हारा है, ि
क किसी और का? तुम होश में हो या बेहोशी में? एक आदमी कुर्सी पर बैठा है
और टांगें हिला रहा है। उसे कुछ पता नहीं कि टांगें क्या हिल रही हैं? एक आद
मी बैठा और बार-बार करवट बदल रहा है। बैठे-बैठे करवट बदल रहा है। उसे कु
छ पता नहीं कि करवट क्यों बदली जा रही है? शायद उसे होश ही नहीं, कि वह
यह क्या कर रहा है? बुद्ध कहते हैं, यह अंगूठा हैं, तेरा है, और तुझे पता नहीं
? हिलता है, और तुझे पता नहीं हैं, तेरा है, और तुझे पता नहीं? हिलता है, औ
र तुझे पता नहीं?मैंने पूछा, और एकदम रुक क्यों गया? उसने कहा, जैसे ही मैं

सजग हुआ—रुक गया। जब तक मैं सजग न था—चलता था। जैसे पैर का अंगूठा हिल रहा है, पैर हिल रहे हैं, और जीवन की सारी की सारी पत्तियां और शाखाएं हिल रही है। वैसे ही चित्त भी बिलकुल अनजान हिल रहा है। हमें कुछ पता नहीं कि क्या चल रहा है भीतर? हमने शायद ही अपने मस्तिष्क के भीतर झांककर, कभी बैठकर देखा हो, क्या खलता है भीतर? अगर देखें तो शायद घबड़ा जाएं। अगर दस मिनट कमरा बंद कर लें और कागज रख लें और कलम ले लें, और जो भी चित्त में चलता हो उसे लिख डालें ईमानदारी से। वही जो चलता हो, तो अपने सगे मित्र को भी बताना मुश्किल पड़ेगा। क्योंकि वह भी देखकर फौरन कहेगा कि चलो किसी डाक्टर के पास। तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है। यह तुम्हारे दिमाग में चलता है। हमने कभी भीतर अगर झांककर देखा हो तो। हमारे भीतर एक बिलकुल विक्षिप्त चित्त बैठा हुआ है। क्या-क्या चल रहा है वहां? पागल में और हमने फर्क क्या है? पागल में और हममें इतना ही फर्क है कि जो हमारे भीतर चलता है हम उसे किसी तरह दबाए रहते हैं। संयम रखते हैं उस पर। वह निकल नहीं जाता है एकदम। उसको हम क्रोध कहते हैं कि जरा हमसे गलती हो गयी क्रोध से। वह निकल गया जो भीतर चलता था। लेकिन सामान्यता सम्हाले रहते हैं।

हर आदमी अपने पागलपन को सम्हाले चल रहा है। जो सम्हाल कर चल रहा है उसको हम कहते हैं नार्मल, और जो नहीं सम्हाल पाता हैं बेचारा, उसको हम कहते हैं पागल है। पागल और नार्मल में इससे ज्यादा फर्क नहीं है। डिग्री का फर्क है। कोई और ज्यादा फर्क नहीं है। हममें से कोई भी किसी भी क्षण पागल हो सकता है। जरा सा धक्का लग जाए, और वह जो भीतर सम्हला हुआ था छलक आए बाहर, तो सब गड़बड़ हो गया। यह जो भीतर लिए हम चल रहे हैं, यह जो चित्त है हमारा—यह जो माइंड है—यह जो विचार है? या हम सिर्फ इनकी तरफ पीठ किए हुए है? जिन्होंने मन को खोजा है—व कहते हैं, कि ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है, जिसने कितनी ही बार आत्महत्या न की हो भीतर। कितनी ही बार कितने ही खून न किए हो। ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है, जिसने जितने अपराध हो सकते है उनकी किसी न किसी कोने में, मन के कहीं न कहीं अंधेरे में इच्छा न की हो। सब अपराध, सब पाप सब बुराइया, सब पागलपन हम सबके भीतर खोज रूप में मौजूद है। और उन सब के विचार डोलते रहते है। तरंगें डोलती रहती है। भीतर सब चलता रहता है। पर हम कभी जागकर उन्हें देखते नहीं हैं। हम उसकी तरफ पीठ किए हुए है। हम डरते है कि वह सब दिखाई न पड़ जाए। शायद इसीलिए हम चौबीस घंटे कहीं न कहीं उलझे रहने चाहते हैं, कि जो भीतर है वह दिखायी न पड़ जाए। दिखाई पड़ेगा तो हम घबड़ा जाएंगे कि यह क्या पागलपन भीतर है। यह मैं हूं जिसका मैं गौरव करता हूं। गान करता हूं। यही मैं हूं। जिस अहंकार की मैं घोषणा करता हूं? इसी पागल को मैं मैं समझे हुए हूं? तो डरता है मन। हम बाहर ही बाहर हरते हैं, भीतर जाते ही नहीं। जैसे किसी घर में

सांप-बिच्छू भरे हो और वह दरवाजे पर ताला लगाकर बाहर बैठा हो। और वह जानता है कि, भीतर सब सांप-बिच्छू भरे हैं। वह भीतर की बात ही नहीं करता है। अगर कोई भीतर की याद भी दिलाता है तो वह कहता है, वहां सब ठीक है। कुछ और बात करो। क्योंकि उसे पता चलता है कि जैसे ही भीतर को बात चल ती है, सारे सांप-बिच्छू भीतर के खयाल में आने लगते हैं। वह कहता है, कुछ ऐ सी तरकीब बताओ कि मैं भीतर-भीतर सब भूल जाऊं। मुझे तो विस्मरण चाहिए। कुछ ऐसी तरकीब बताओ कि भक्ति-भाव में लीन हो जाऊं। कुछ ऐसा बताओ स मर्पण कर दूं। कुछ ऐसा बताओ कि यह सब मुझे याद ही न रहे। कुछ ऐसा बताअ ो कि मैं संसार से मुक्त हो जाऊं। मैं उनके भीतर जो सांप-बिच्छू भरे है, जो अंधे रा भरा है, उसे देखने की हिम्मत नहीं जुटा पाता। और उसे पता नहीं है कि, जब तक वह देखने की हिम्मत न जुटाए तब तक वे सांप-बिच्छू बिदा न होंगे। वह न देखने में ही पैदा हुए हैं। वह वहां मौजूद न होने से ही इकट्ठे हुए हैं। अगर मैं व हां चला जाऊं, पूरे होश से भर कर तो वे वैसे ही विलीन हो जाएंगे जैसे कोई दि ए को लेकर अंधेरे को खोजने चला जाए और जहां-जहां जाए वहीं-वहीं अंधेरा न पाए।

हमारे चित्त की सारी रुग्णता, हमारे चित्त का सारा विष, हमारे चित्त का सारा ज हर हमारी गैर-मौजूदगी से पैदा हुआ है। हम अनुपस्थित है। हर आदमी अपने भीत र एपसेंट है। एक जगह से हम बिलकुल अनुपस्थित है, वहां हम कभी नहीं जाते। प्राक्सी देने वाला भी हमारा वहां कोई नहीं है। वहां सब अंधेरा पड़ा हुआ है। वहां हम कभी जाते नहीं। हम बाहर-बाहर घूमते रहते हैं। सब तरफ घूमते हैं, एक त रफ छोड़कर—वह जगह, जो हम हैं। वह जो मैं हूं। वहां हम प्रवेश नहीं करते, वह ां हम कभी नहीं जाते। ध्यान का अर्थ है, वहां जाना। ध्यान का अर्थ है—चित्त में जो है, उसके प्रति जागना। ध्यान का अर्थ है—जो भी है बुरा—भला—गंदा—पागलपन —उस सबके प्रति होश से भरना। लेकिन, होश से वही भर सकता है जो चित्त के प्रति दमन से न भरा हो। इसलिए ध्यान की प्रक्रिया में दमन नहीं। यह ध्यान का पहला, सूत्र है। सप्रेशन नहीं। क्योंकि जिन आदमी ने दमन किया, वह भीतर जाने से डरेगा। उसने भीतर सब गंदगी इकट्ठी कर दी। अब वह भीतर जाने से घबड़ाए गा। उसे पता है कि भीतर क्या-क्या है? और हम सबने दमन किया है। क्रोध का, काम का, लोभ का, सबका दमन किया है। भीतर सब इकट्ठा हो गया है। और व ह सब इतना इकट्ठा हो गया है कि वहां जाने की हिम्मत भी जुटानी मुश्किल मालू म पड़ती है। वहां हम नहीं जाना चाहते। लेकिन ध्यान रहे, प्रभु मंदिर के द्वार तक पहुंचने में वहां से गुजरना ही पड़ेगा। अपने से गुजरे बिना कोई प्रभु तक नहीं पहुं च सकता। अपने से गए बिना कोई प्रभु तक नहीं पहुंच सकता। कोई भी हो, और कहीं से भी चले, एक रास्ते से गुजरना ही पड़ेगा। वह जो मैं हूं। उससे गुजरे बि ना कोई परमात्मा तक नहीं पहुंच सकता। मैं ही द्वार हूं। और इस द्वार से गुजरना ही पड़ेगा। और इसी द्वार से हम डर गए हैं। दमन के कारण डर गए हैं। हमने

वहां सब छिपा दिया है। वहां हम देखने को भी जाने को राजी नहीं है, कि वहां क या है?

ध्यान का अर्थ है—दमन नहीं—जागरण। जा भी चित्त में है उसे दबाना नहीं। दबाने का मतलब होता है, अनकांसेस में धकेल दो। अंधेरे मग धकेल दो, जहां दिखायी न पड़े। जैसे कोई आदमी अपने घर में तल-घर बना लेता है। जो भी कचरा, कूड़ा , कबाड़ है, किसी की हत्या कर दी, किसी की चोरी कर लाए, वह सब तल-घर मग डालता चला जाता है। नीचे तल-घर भरता चला जाता है। वह किसी को ब ताता नहीं कि मेरे घर में तल-घर है। क्योंकि वहां उसने हत्याएं की हैं। वहां वह दूसरों की स्त्रियों को उठा लाया है। वहां दूसरे का धन ले आया है। वहां उसने क्य ा नहीं लिया है? वह तल-घर किसी को बताता नहीं है। खुद भी वहां जाने से डर ता है। वहां उसने जो कुछ किया है वह इतना घबड़ाने वाला है कि मैं कहां कैसे जाऊं। हमने अपने चित्त को दो हिस्सों में बांट रखा है। एक तो वह चित्त है—थोड़ा सा ऊपर का बैठकर खाना—जहां हम मेहमानों का स्वागत करते है, और अच्छी-अच्छी बातें करते हैं। बिलकुल झूठा है बैठकखाना। बैठकखाना से झूठी कोई जगह घर में दूसरी नहीं होती। बैठकखाना असली जगह नहीं है। वहां जो पर्दे हमने लगा ए हैं और वहां जो फर्नीचर हमने लगाया है, वह सब दिखावा है। वह सिर्फ उनके लिए है जो बाहर से आते हैं, उनके लिए धोखा है। लेकिन कोई धोखा-वोखा नहीं खाएगा, क्योंकि ऐसे ही धोखा उन्होंने भी अपने घर में बना रखा है। बैठकखाना झू ठी जगह है। वह हमारा असली घर नहीं है। असली घर तो बैठकखाने के पीछे शु रू होता है, और वहां जो है वहां हम खुद भी जाने से डरते हैं।

एक तो चित्त का वह हिस्सा है जिसे कांसेस कहें, चेतन कहें। चित्त दो हिस्सों में बंटा नहीं है। हमने बांट दिया है। एक हिस्सा वह है, जिसको चेतन कहें। वहां हम मेहमानों का स्वागत करते हैं, नमस्कार करते हैं, अभिवादन करते हैं, अच्छी-अच छी बातें करते हैं। शिष्टाचार के नियम हैं। समाज है। संस्कृति है सभ्यता है। वह बस वही है। वह बहुत छोटा हिस्सा है। अगर हम मन के दस खंड करें तो वह ए क खंड है। नौ खंड अंधेरे हैं भीतर। वहां असली आदमी रहता है, खूंखार, जंगली। हजारों लाखों वर्षों से आदमी वहां रहा है—वही वहां रहता है। वहां न सभ्यता है, न संस्कृति है, न शिष्टाचार है। वहां हम असली हैं। वहां हम जाते ही नहीं। वहां हम झांकते ही नहीं हैं। हम तो उसी बैठकखाने में जिंदगी गुजारने की कोशिश क रते हैं जो बिलकुल झूठा है। और तब हम की सत्य तक नहीं पहुंच सकते हैं। अप ने नौ खंडों को भी जानना पड़ेगा। इन नौ खंडों से बचकर भागने का उपाय नहीं है। शराब में आदमी इन्हीं नौ खंडों से मानता है, और मंत्र जाप में भी इन्हीं से भ ागता है। प्रार्थना-पूजा में भी इन्हीं से भागता है। मेस्कलीन और लिसर्जिक एसिड में भी इन्हीं से भागता है। सिनेमा में, संगीत में, नाच में भी इन्हीं से भागता है। आदमी अपने ही उन खंडों से भागता है, जिन्हें वह देखने की हिम्मत भी नहीं जुटा पाता, साहस नहीं कर पाता।

लेकिन साधक को उसे देखना ही पड़ेगा। जाना ही पड़ेगा। उसे प्रवेश करना ही पड़ेगा। उसे अपने उस पूरे चित्त में जाना पड़ेगा जहां वह कभी नहीं गया है। ध्यान का अर्थ है, अपने अचेतन में सचेत प्रवेश। ध्यान का करूंगा। उसका। उसे देखूंगा कि वह क्या है? जरूरी है इसके लिए, कि मैं दमन करूं। जरूरी है, इसके लिए, कि मैं चित्त की किसी वृत्ति के प्रति कोई निर्णय न लूं। कोई जजमेंट न लूं। क्योंकि जैसे ही मैंने निर्णय लिया, तो जिसको मैं बुरा कहता हूं उसको मैं सामने न लाना चाहूंगा। जिसे मैं बुरा कहता हूं उसे मैं हटा दूंगा और जिसे अच्छा कहता हूं उसे क्षार पर लगा दूंगा। फिर खंड-खंड चित्त शुरू हो जाएगा। जिस आदमी को ध्यान करना है उसे जजमेंट—उसे निर्णय—कि यह बुरा है, यह अच्छा है, यह कुछ भी करने की जरूरत नहीं है। उसे इतना ही जानना है कि क्या है? जो है उसे मैं जानूंगा। वह बुरा हो, भला हो, पाप हो, पुण्य हो, वह जो भी हो, मैं कोई निर्णय नहीं लेता। मैं अनिर्णीत—मैं बिना किसी निर्णय के जाऊंगा और देखूंगा कि क्या है? और बड़े आश्चर्य की बात है, जो आदमी निर्णय नहीं लेता पूर्व से, यह बुरा है, यह अच्छा है, यह पाप है, यह पुण्य है, यह करना है, यह नहीं करना है, यह होना है, यह नहीं होना है। ऐसा जो डिवीजन, खंड नहीं करता, उसका चित्त अखंड हो जाता है। और जो आदमी अपने चित्त की उसकी समग्रता में अत्यंत निष्पक्ष भाव से साक्षी बन कर देखने की हिम्मत जुटाता है उस आदमी के जीवन में एक क्रांति आनी शुरू होती है, जिसका हमें कुछ भी पता नहीं है। जैसे ही वह निष्पक्ष होकर देखना शुरू करता है, वे सारी बातें, जो कल तक बड़ी भारी मालूम पड़ती थीं, विदा होने लगती हैं। छायाओं की तरह विदा होने लगती हैं। यह निष्पक्ष साक्षी भाव, यह बिना चुनाव के, बिना निर्णय के, चित्त में जो भी उसे देखने की हिम्मत और साहस ध्यान का लक्षण है। ध्यान का अर्थ हुआ—जो भी मेरे भीतर है उसे मैं जानूं और देखूं। न निर्णय करूं, न बुरा कहूं, न भला कहूं। न कंडमनेशन न जस्टीफिकेशन। जो भी है उसे मैं देखूं और जानूं कि यह है। सिर्फ इतना ही—ध्यान का इतना ही अर्थ है कि चित्त के समस्त पर्तों के सामने निष्पक्ष भाव खड़े हो जाना। लेकिन हम—हम बड़ी अजीब मनोदशा में हैं। हम तो किसी चीज के साथ निष्पक्ष खड़े ही नहीं हो सकते। हम तो किसी भी चीज के साथ बिना पक्ष लिए एक क्षण नहीं ठहर सकते। अगर गुलाब के फूल के पास खड़े होगे तो यह बिना कहे नहीं ठहर सकते कि सुंदर है। ऐसा नहीं हो सकता कि हम कुछ न कहे और दो क्षण गुलाब के फूल के साथ ठहर जाए। जो भी हो गुलाब का फूल—सुंदर हो कि असुंदर हो—हम कुछ न कहे—हमारा चित्त कोई निर्णय न ले। सिर्फ फूल को देखे और ठहर जाए। हम नहीं ठहर सकते। हम चांद को देखें और ठहर जाए, और निर्णय न ले कि सुंदर है, असुंदर है। एक स्त्री का चेहरा दिखाई पड़े, सुंदर युवक का चेहरा दिखाई पड़े, तो यह असंभव है कि हम यह सोचे बिना, एक क्षण रुक जाए, कि इसे मैं पा लूं। इसका मैं मालिक हो जाऊं। हमारी सारी आदत तत्काल पक्ष निर्णय करने की है। हम निष्पक्ष एक क्षण भी नहीं ठहरते। ध्यान का अर्थ है—निष्पक्ष, जो है उ

सके पास ठहर जाना। कुछ निर्णय न लेना जल्दी में। क्योंकि जैसे ही निर्णय लिया, ध्यान विदा हुआ, विचार शुरू हुआ। इसे समझ लेना। जैसे ही निर्णय लिया, ध्यान गया, विचार शुरू हुआ। निर्णय विचार है—पक्ष विचार है। जैसे ही मैंने कहा, गुलाब का फूल सुंदर है, विचार शुरू हो गया, फूल विदा हो गया। दर्शन समाप्त हुआ। ध्यान का अंत हुआ। विचार बीच में आ गया। अगर मैं यह न कहूं कि गुलाब का फूल सुंदर है, अगर मैं यह न कहूं कि पहले भी इस फूल को देखा था, अगर मैं यह न कहूं कि इसे मैं तोड़कर अपने बटन-होल में लगा लेना चाहता हूं। अगर मैं यह कुछ भी न कहूं। गुलाब वहां हो—मैं यहां होऊं, बीच में कोई विचार न हो। तब गुलाब और मेरे बीच जो मिलन होगा वह ध्यान हुआ। और ऐसे ही हम अपने चित्त के सारे फूल, सारे कांटे, जो भी वहां है, उसे देखें। उसका दर्शन करें। उसे इस दिशा में थोड़ा प्रयोग करना पड़े। इसकी थोड़ी आदत बनानी पड़े। इस तरफ थोड़ा अभ्यास ले जाना पड़े। क्योंकि हमारी निरंतर की आदत, दर्शन हुआ नहीं की, शब्द हमने दिया नहीं। कुछ हुआ और हमने फौरन शब्द दिया, कि यह ऐसा है। और पह शब्द द्वार पर खड़ा हो गया। दर्शन बंद हो गया। ध्यान विलीन हो गया। ध्यान का अर्थ है, निःशब्द निर्विचार साक्षी भाव। थॉटलेस विटनेस। कोई विचार नहीं, सिर्फ साक्षी भाव। सिर्फ देख रहा हूं। इसे बाहर भी प्रयोग करें। फूल के पास से गुजरे तब भी। पत्नी के पास से गुजरें तक भी। बेटे के पास से गुजरे तब भी। पति जब सामने हो तब भी। अनजान आदमी रास्ते से गुजरता हो तब भी। आकाश का तारा देखें तब भी। बाहर भी प्रयोग करें ध्यान का। चुप हो जाए। देखें, जो है, और फिर खोजें, कि क्या होता है सिर्फ देखने से? फिर भीतर भी प्रयोग करें। जब विचार चले तब, क्रोध चेले तब। जब काम चले, सेक्स चले तब। तब देखें, क्या है भीतर, कौन सा धुआं चल रहा है? देखूं मैं, चुप होकर देखूं। क्या है, उसे पहचानूं। आर पहचान तभी सकूंगा जब पूरा देखूं। बीच में कुछ न आने दूं। बाहर भी, भीतर भी, ध्यान का प्रयोग चले तो विचार से मुक्ति होगी। और जो है, उसे जानने की क्षमता प्रगाढ़ होगी। और एक बिलकुल नया द्वार खुलेगा, जिसकी हमें अब तक कोई पहचान नहीं है। एक बहुत सौंदर्य की अनूठी संभावना खुलेगी, जिसे हमने कभी नहीं जाना। एक सत्य की बिलकुल नयी हवा चलेगी जिससे हम बिलकुल अपरिचित है। कुछ ऐसे फूल खिलेंगे, कुछ ऐसी सुगंध होगी जिसे हम पहचानते नहीं। कुछ अज्ञात हममें प्रवेश करेगा।

ध्यान के अतिरिक्त अज्ञात कभी प्रवेश नहीं कर रहा है। विचार तो ज्ञात की ही पुनरुक्ति है। और जब हम एक फूल के पास खड़े होकर कहते है कि हां, देखा है, पहचाना है, रिकग्नाइज करते हैं, विचार पुराना है। पहले के देखे फूल हैं। यह फूल कब देखा था? यह फूल तो कभी नहीं देखा था। यह तो परमात्मा भी पहली ही बार देख रहा होगा। यह तो किसी ने कभी नहीं देखा था। इस फूल को देखने के लिए सब फूल विदा हो जाए। सब शब्द विदा हो जाए। सीधा मैं इसके रास्ते खड़ा हो जाऊं। जैसा फूल के लिए वैसा स्वयं के लिए है। चित्त की समस्त स्थितियों के

सामने मैं खड़ा हो जाऊं। सीधा खड़ा हो जाऊं, जो भी है उसे देखूं। डरूं भी नहीं। बहुत बुरा दिखाई पड़ेगा। लेकिन वह बुरा इसीलिए मालूम होता है कि हमने बुरे की धारणा बना रखी है। प्रशंसित भी न हो जाऊं। बहुत पुण्य भी दिखाई पड़ते है। बहुत प्रेम भी वहां दिखाई पड़ सकता है, लेकिन प्रशांति भी न होऊं। निंदित भी न होऊं, क्योंकि जैसे ही मैं वह हुआ, मन, चित्त डांवाडोल हुआ। ध्यान विलीन हु आ। विचार शुरू हुआ। विचार का कंपन बीच में न आए। एक दर्पण की भांति—जै से खाली दर्पण जिस पर कोई धूल नहीं है वैसे। मैं स्वयं की देखने की दिशा में च लूं। इस प्रक्रिया का नाम ध्यान है। ध्यान है आत्म-निरीक्षण। ध्यान है स्वयं के प्रति साक्षी भाव। ध्यान है—अपने ही लिए विटनेस हो जाना।

स्वामी राम अमरीका गए। वहां लोग बड़ी मुश्किल में पड़े, क्योंकि स्वामी राम की आदत से वह परिचित ही न थे। राम हमेशा थर्ड पर्सन में बोलते थे। वह ऐसा न हीं बोलते थे कि, मैं गया, एक जगह, और कुछ लोग मुझे गाली देने लगे। वह ऐ सा ही कहते थे कि आज बड़ा मजा हुआ। राम गए एक जगह, कुछ लोग राम को गालियां देने लगे। लोगों ने कहा, आप किसके बाबत कहते हो? राम यानी आप ही न! राम ने कहां—मैं कहां! मैं तो दूर खड़ा देखता था। राम को गालियां पड़ती थी। राम बेचैन होते थे। राम गुस्से में भरते थे। मैं दूर खड़ा देखता था और हंस ता था। अच्छे फंसे राम। आज अच्छे फंसे। क्या गालियां पड़ रही हैं। अब क्या करो गे? और राम जो करते थे वह मैं देखता था। बड़ी मुश्किल थी लोगों को समझने में कि यह आदमी क्या कह रहा है? कभी आपने भी यह हिम्मत की है? कि आप दूर खड़े हो गए हों, और देखा हो कि यह चित्त क्या करता है? ये राम क्या क रते हैं? जब इन गालियां पड़ती हैं तब ये क्या करते हैं? कभी आप दूर खड़े हुए, कभी आप तीसरे आदमी बने? अगर नहीं बने तो ध्यान का आपको कोई पता न हीं हो सकता। ध्यान का अर्थ है—तीसरे आदमी बन जाना। हम हमेशा दो आदमी है आप मेरे पास आए और मुझे गाली दें—वहां दो आदमी है। एक आप, गाली देने वाले—एक में, गाली का उत्तर देने वाला। लेकिन एक कोई और भी है न! जो दे ख रहा है यह सब कि गाली दी गई। गाली ली गई। गाली का उत्तर लिया गया। वह तीसरा भी मेरे भीतर है न। आपके भीतर भी तीसरा है। वहां चार हैं। लेकिन प्रत्येक के लिए तीन हैं। एक यह—जिसको गाली दी जा रही, यह जो बेचैन हो र हा गाली सुनकर। और एक वह, जो गाली दे रहा—एक जो इन दोनों को देख रहा है। यह तीसरा निरखना चाहिए तो ध्यान विकसित होगा। ध्यान, यानी यह तीसर ा, दी थर्ड। यह साफ होना चाहिए। थोड़ा प्रयोग करके देखें, और बहुत हैरानी होग ी। पैर में चोट लगी है, दर्द हो रहा है, सिर दुख रहा है। थोड़ा देखें, वहां दो हैं य ा तीन। दर्द है दर्द जिसे हो रहा है, कोई एक और भी जो दोनों को देख रहा है— दर्द भी है और दर्द हो रहा है और कोई एक और भी है। एक और भी है। वह ए क और भी साक्षी होने से क्रमशः प्रकट होगा।

सिकंदर हिंदुस्तान आया। वापस लौटता है। उसके मित्रों ने कहा, एक संन्यासी भी ले आना। सब लूटकर जब जाने लगा तो एक गांव में खयाल आया कि एक संन्यासी और ले आए। तो पूछा किसी से, कोई संन्यासी होगा? या एक संन्यासी। दो सिपाही भेजे, कि ले जाओ उसको और कहो कि हम तुम्हें शाही सम्मान देंगे। सुविधा देंगे। आदर देंगे। हमारे साथ यूनान चलो। महान सिकंदर की आज्ञा है। वे सिपाही नंगी तलवार लेकर गए और उस संन्यासी से कहा कि चलो, महान सिकंदर ने कहा है। वह संन्यासी हंसने लगा। उसने कहा, पागल है जो स्वयं अपने को महान कहता हो। उन्होंने कहा, तुम्हें पता नहीं, तुम किसको पागल कह रहे हो? मुश्किल में पड़ जाओगे। तुम्हें आज्ञा दी गयी है, चलो हमारे साथ। उस संन्यासी ने कहा, तुम्हें शायद पता नहीं–संन्यासी का अर्थ ही यह होता है कि–जिसने सबकी आज्ञा पालना छोड़ दिया। अब हम किसी की आज्ञा नहीं पालते हैं। अब हम किसी की आज्ञा पालते ही नहीं। उन लोगों ने कहा–तुम्हें पता नहीं–सिकंदर गर्दन अलग करवा देगा। उसने कहा, तुम सिकंदर से जाकर कहना, कि संन्यासी होने का अर्थ ही यह होता है कि हम जानते हैं, कि गर्दन अलग है। उसे अब अलग करने का कोई सवाल नहीं है। वह है ही अलग। सिकंदर को खबर की गयी। सिकंदर खुद गया। और उसने कहा, तुम भयभीत नहीं होते? यह तलवार देखते हो? उस संन्यासी ने कहा, भयभीत! जो भयभीत होता है उसको भी मैं देख रहा हूं। जो भयभीत कर रहा है, उसको भी मैं देख रहा हूं। और मैं? मेरा कोई लेना-देना नहीं है। न भयभीत करने वाले से–न भयभीत होने वाले से। दोनों को देख रहा हूं। पता नहीं सिकंदर समझा या नहीं समझा। लेकिन उसने कहा, अच्छा होगा कि तुम मेरे साथ चलो, अन्यथा मैं तुम्हें खत्म करके जाऊंगा। उस संन्यासी ने कहा–तुम खत्म करो–बड़ा मजा होगा। तुम भी देखोगे कि गर्दन गिरी और मैं भी देखूंगा कि गर्दन गिरी हम दोनों देखेंगे, गर्दन को गिरते।

यह जो देखने वाला है भीतर–यह ध्यान है। यह जो देखने की क्षमता है। यह ध्यान है। यह जीवन को खड़े होकर जो भी हो रहा है उसको देखने की जो क्षमता है वह ध्यान है। तीसरा सूत्र है–ध्यान–जीवन को देखें। मन को देखें। जो हो रहा है उसको देखें। एक द्रष्टा हो जाएं। लड़ें न। निर्णय न करें। चुनें न। देखें–देखें। लेकिन हमें तो देखना बहुत मुश्किल है। हम तो नाटक भी देखते जाते हैं तो वहां भी भूल जो हैं, कि सिर्फ देखने वाला हैं, और यह भी भूल जाते हैं, कि जो हो रहा है पर्दे पर–वह जो फिल्म के पर्दे पर घटित हो रहा है, वह सिर्फ बिजली का खेल है। छाया और धूप का। वहां कोई है नहीं। वहां कोई दुःख की घटना घटती है और देखें हॉल में। लोग एक-दूसरे से बचाकर आंसू पोंछ रहे है। देख लेते हैं आसपास कि कोई देख तो नहीं रहा है? और इसलिए सिनेमा में अंधेरा बड़ा सहयोगी होता है। अंधेरा बड़ा उपयोगी है। किसी दिन अगर सिनेमा प्रकाश में होने लगा तो इतना मजा नहीं देगा, क्योंकि बड़ा डर लगेगा कि कोई देखन ले। आंसू पोंछ रहे हैं

लोग। क्या देखकर आंसू पोंछ रहे हैं? पर्दे को। पर्दे पर चलती हुई विद्युत की किरणों की बनी छाया, धूप और छाया की रेखाओं को? वहां कोई भी तो नहीं है।
विद्यासागर एक नाटक देखने गए थे कलकत्ते में। और इतने उत्तेजित हो गए नाटक देखकर—एक आदमी है जो पीछे पड़ा है। एक औरत के। वह उसे परेशान कर रहा है। आखिर में अंधकार में एक घने जंगल में उसने स्त्री को पकड़ लिया है। वह बलात्कार करने को है ही, कि विद्यासागर भूल गए। छलांग लगाकर मंच पर चढ़ गए। निकाला जूता और मारने लगे उस पात्र को। उस पात्र ने विद्यासागर से ज्यादा बुद्धिमत्ता दिखायी। वह जूता हाथ में लेकर उसने नमस्कार किया और लोगों से कहा—इतना बड़ा पुरस्कार अभिनय का मुझे कभी नहीं मिला। विद्यासागर जैसा बुद्धिमान आदमी अभिनय को समझ गया सच है। इस जूते को सम्हालकर रख लूंगा। अब इसे मैं विद्यासागर जी—आपको दूंगा नहीं। यह मेरा सबसे बड़ा पुरस्कार है। यह याद रहेगा कि कभी अभिनय ऐसा किया था कि सत्य मालूम पड़ गया। और विद्यासागर को भी लगा कि सच है। भूल गए कि नाटक हो रहा है।
साक्षी वहां भी हम नहीं रह पाते—नाटक में। तो जिंदगी में कैसे रह पाएंगे? नाटक को हम ऐसा समझ लेते हैं कि जिंदगी है। और ध्यान करने वाले को जिंदगी ऐसी समझनी होगी जैसे नाटक है। ध्यान में जाने वाले को जानना होगा कि क्या है यह सब? किसी ने गाली दी है, तो क्या है? शब्दों की, कुछ ध्वनियों की, टंकार। जो कान के पर्दों को हिला जाती है। और क्या है? और किसी ने जूता फेंककर मार दिया और सिर पर लगा है जूता। तो क्या है—कुछ अणुओं का कुछ और अणुओं पर दबाव, और क्या है? ध्यान वाले को जानना पड़ेगा। और किसी ने काट दी है गर्दन, और गुजर गयी है तलवार गर्दन से। आरपार हो गयी है। जगह भी वहां—इसीलिए आरपार हो गयी है। चीजें अलग थीं, इसीलिए अलग हो गयी हैं। और क्या है? ध्यान के प्रयोग में निरंतर जानना होगा कि है क्या? और खोज करनी पड़ेगी और जागना पड़ेगा। और तब धीरे-धीरे बहुत अदभुत होगा और अदभुत के द्वार खुलने लगेंगे। साक्षी जैसे ही मन होता है वैसे ही वैसे एक अनुपम शांति, एक सन्नाटा, एक शून्य आने लगता है। बीच में जगह खाली—स्पेस पैदा होने लगती है। आकाश बीच में आने लगता है। चीजें अपनी सचाई में दिखाई पड़ने लगती हैं। नाटक नाटक हो जाता है। और जब नाटक नाटक हो जाता है तब संभावना उतरी है उसकी, जो सत्य है। जब तक नाटक सत्य है, तब तक सत्य असत्य ही बना रहेगा। जब नाटक नाटक हो जाएगा असत्य असत्य हो जाएगा। दी फाल्स इज नोन ऐज दी फाल्स। जब हम भ्रामक को—मिथ्या को, जान लेंगे, मिथ्या है—तब उसकी प्रतीति, उसका उदघाटन—उसका—वह जो सत्य है—जो मिथ्या नहीं है, वह उतरना शुरू होता है। ध्यान द्वार में प्रवेश है। लेकिन प्रभु में पहुंच जाना नहीं।
ध्यान द्वार में प्रवेश है। मैं आपके मकान में प्रविष्ट हो गया—लेकिन यह आपमें पहुंच जाना नहीं। और प्रभु मंदिर में पूर्ण प्रवेश तो जब प्रभु में हम एक ही हो जाए, तभी संभव होता है। तो तीसरा सूत्र है ध्यान—साक्षी भाव। इसमें द्वार खुल जाएग

ा। आप भीतर पहुंच जाएंगे। लेकिन फिर भी एक रुकावट है। प्रभु और है—आप अ
ौर है। मंदिर में पहुंच गए, वह और है, आप और हैं। सत्य दिखायी पड़ा है। लेकि
न सत्य वह रहा—आप यह रहे। अब यह फासला भी टूट जाएगा। तो ही सत्य को
 उसकी परिपूर्णता में जीया और जाना जा सकता है। अभी सत्य को देखा गया बा
हर से—दूर से—अभी सत्य को पहचाना गया बाहर से देर से। अभी सत्य ही नहीं
हो जाया गया है। सत्य को जानना ही नहीं है। सत्य को जीना भी है। सत्य को दे
खना ही नहीं है। सत्य को जाना भी है। परमात्मा में पूर्ण प्रवेश स्वयं के परमात्मा
 हुए बिना नहीं हो सकती है। ध्यान के भी ऊपर उठना होगा।

कल, चौथे सूत्र में हम ध्यान के भी पार चले। समाधि की ओर। मेरी बातों को इ
तनी शांति से सुना उससे अनुगृहीत हूं, और सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम
 करता हूं।

मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

अहमदाबाद

दिनांक १० जून १९६९; सुबह

५ साक्षी भाव है द्वार

मेरे प्रिय आत्मन,

पिछली चर्चाओं के आधार पर मित्रों ने बहुत से प्रश्न पूछे हैं एक मित्र ने पूछा है
कि आप गांधीजी की भांति हरिजनों के घर में क्यों नहीं ठहरते हैं?

एक छोटी सी कहानी से समझाऊं। जर्मनी का सबसे बड़ा पादरी आर्च प्रीस्ट एक छ
ोटे-से गांव के चर्च का निरीक्षण करने गया था। नियम था कि जब वह किसी चर्च
 की निरीक्षण करने जाए तो चर्च कि घंटियां उसके स्वागत में बजाई जाती थीं।
लेकिन उस गांव के चर्च की घंटियां न बजीं। जब वह चर्च के भीतर पहुंचा तब उ
सने उस चर्च के पादरी को पूछा कि मेरे स्वागत में घंटियां बजती हैं हर चर्च की।
 तुम्हारे चर्च की घंटी क्यों नहीं बजी? उस पादरी की आदत थी, कि वह कोई भ
ी कारण बताए, तो उसका तकिया कलाम था, वह इसी में शुरू करता था, कि इ
सके हजार कारण है। उसने कहा—इसके हजार कारण हैं। पहला कारण तो यह कि
 चर्च में घंटी भी नहीं है। उस आर्च प्रीस्ट ने कहा, बाकी कारण रहने दो, उनके ि
बना भी चल जाएगा। यह एक ही कारण काफी है।

मुझसे आप पूछते हैं, मैं हरिजन के घर क्यों नहीं ठहरता? पहली तो बात यह कि
 मेरी दृष्टि में कोई हरिजन नहीं है। उसको ढूंढूं कहां? आदमी हैं। हरिजन नहीं हैं।
 गांधीजी की दृष्टि में हरिजन होंगे, इसलिए वह हरिजन का घर ढूंढूं लेते हैं। यह
ध्यान रहे, अछूत और शूद्र बड़े अच्छे शब्द थे। यह हरिजन बहुत खतरनाक शब्द है
। अछूत और शूद्र में एक चोट थी, एक दर्द था, एक पीड़ा थी। अछूत और शूद्र
अपने को कोई कहने में घबराता था—बुरा मानता था। यह हरिजन बहुत खतरनाक
 शब्द है। इसे कहने में अकड़ मालूम पड़ती है, कि हम हरिजन है। बोल वही है।
बीमारी का नाम बदल देने से बीमारियां नहीं बदल जाती है। और जहर के ऊपर

शक्कर लगा देने से सिर्फ मरने की सुविधा हो जाती है। मरने में आसानी हो आती है। और कुछ भी नहीं होता। ये हरिजन जैसे शब्द बड़े खतरनाक है। किसी भी तरह से हरिजन को रिकग्नेशन देना हरिजन को बचाने की तरकीब है। चाहे उसको गाली दो, और चाहे सम्मान दो। और चाहे उसे छुओ मत और चाहे उसके घर ठहरने का आयोजन। करो। लेकिन हरिजन की स्वीकृति, रिकग्नेशन, कि यह आदमी हरिजन है, छूने योग्य नहीं है। इसके घर ठहराना जरूरी है, बड़ी ऊंची बात है। इन दोनों स्थितियों में हरिजन आता है और बचाया जाता है। हरिजन को मिटाना है—बचाना है।

लेकिन गांधीजी के साथ एक कठिनाई थी। बड़ी बीमारी—वह हिंदू नाम की जो बीमारी है, उसके वह बड़े प्रेमी थे। उसी बीमारी की यह छोटी संतति, यह जो हरिजन है। यह जो शूद्र है। अदभुत है। उसी बड़ी बीमारी की पैदाइश है। उस बड़ी बीमारी को तो वह बचाना चाहते थे और उसी बड़ी बीमारी के भीतर इस छोटी बीमारी के लिए भी कोई समझौते का रास्ता खोजना चाहते थे। सच तो यह है, कि हिंदू, मुसलमान, ईसाई, ये सारी बीमारियां मिटनी चाहिए। और जो लोग हिंदू समाज के भीतर दुःखी अनुभव करते थे उन्हीं हिम्मत जुटानी चाहिए, कि वह कहें कि हम हिंदू नहीं है। क्या जरूरत है उन्हें हिंदू होने की? हिंदू होने से उन्हें क्या दिया है? लेकिन अगर वे हिम्मत भी जुटाए कि हिंदू नहीं है, तो वह कहेंगे कि हम मुसलमान होते है। हम ईसाई होते है। हम बौद्ध होते हैं। एक जेल से छूटे नहीं कि वह फौरन पूछते हैं कि हम किस जेल में जाए? अंबेडकर ने थोड़ी हिम्मत जुटाई और कहा कि छोड़ दो हिंदू धर्म। लेकिन हिम्मत पूरी नहीं है वह भी। अंबेडकर ने इधर हिम्मत जुटायी—तत्काल दूसरे जेल में भिजवा दिया। हो सकता है—दूसरा जल थोड़ा कम्फर्टेबल हो। कम्फर्टेबल जेल और खराब होते हैं। क्योंकि उनको छोड़ने का मन भी हनीं होता। हिंदू से हटो—बौद्ध हो जाओ। ईसाई हो जाओ, मुसलमान हो जाओ। वह भी सब पागल घर हैं। भी एक पागल घर है, हरिजनों को—अछूतों को, शूद्रों का, मुक्त हो जाना चाहिए सब जेलों से। कह देना चाहिए—हम सिर्फ निपट आदमी है। और हम किसी के साथ जुड़ते नहीं। लेकिन वह भी उत्सुक हैं कि उनको हरिजन माना जाए। वह भी बड़े उत्सुक हैं कि उनको सम्मान दिया जाए हरिजन होने का। अपमान उन्होंने काफी झेल लिया है, अब बदले में सम्मान चाहते हैं। लेकिन ध्यान रहे—अपमान हो या सम्मान हो। हरिजन होने से आदमी आप नहीं हो सकते हैं।

और इस समय दुनिया को आदमियों की जरूरत है। एक प्रयोग करना चाहिए, कि हम कारागृह में बाहर होंगे। जब तक पृथ्वी पर इतने हिम्मतवर लोग कुछ इकट्ठे नहीं होते जो सब जेलखानों को इंकार कर दें, और कहें कि हम बस सिर्फ आदमी है। यह हिंदुस्तान की सरकार है। सिकुलर कहलाती है अपने को। धर्म निरपेक्ष कहलाती है। लेकिन यहां भी नौकरी के फार्म पर लिखा रहता है—आपका धर्म क्या है? क्या पागलपन है? धर्म पूछने को जरूरत क्या है? एक आदमी का आदमी ह

ोना काफी है। स्कूल में भर्ती करो लड़के को, तो फार्म में, लिखा रहता है कि धर्म क्या है? यह क्या पागलपन है? धर्म पूछने की क्या जरूरत है? आदमी होना काफी है। सेंसेस होगा मुल्क की मतगणना होगी जनगणना होगी—उसमें भी भरा रहेगा—कौन किस धर्म को मानता है? फिर यह बेईमानी की सिकुलरेज्म है। यह कोई ठीक सिकुलरेज्म न हुआ। धर्म निरपेक्ष होने का मतलब है कि हम इस देश आदमी को सिर्फ आदमी मानते हैं। और हम कोई दूसरी सीमा और कोई विशेषण उसके ऊपर नहीं लगाते। अगर थोड़ी हिम्मत जुटायी जाए तो हिंदुस्तान आदमियों का समाज बन सकता है। लेकिन सब तरफ वही आदमी और आदमी के बीच दीवार खड़े करने का बड़ा आग्रह है। गांधीजी ने कितनी मेहनत की जिंदगी भर कि हिंदू-मुसलमान एक हो जाए। लेकिन पहले बीमारी को स्वीकार करते हैं। फिर एक करना चाहते हैं। पहले कहते हैं—हिंदू भी ठीक—मुसलमान भी ठीक। दोनों एक हो जाए। दोनों गलत है। और दोनों के एक होने की जरूरत नहीं है। दोनों के मिटने की जरूरत है। वह दोनों मिटेंगे तो आदमियत एक होगी। दोनों एक नहीं हो सकते। हिंदू-मुसलमान एक नहीं हो सकते। उनका हिंदू होना—मुसलमान होना ही उनका अंधा होना है। अलग होना है—पृथक होना है। हिंदू होने में ही दुश्मनी छिपी है। मुसलमान होने में दुश्मनी छिपी है। हिंदू-मुसलमान दोनों मिट जाए तो आदमियत एक हो सकती है। हिंदू-मुसलमान कभी एक नहीं हो सकते। अब मलेरिया-प्लेग एक हो जाएं तो फायदा थोड़ा होगा—और खतरा होगा। इनको मिटाने की जरूरत है। इनको एक करने की जरूरत नहीं। जिंदगी भर गांधीजी वही-वही कोशिश करते रहे। सब बीमारियां के साथ समझौते की उनकी आदत थी। किसी बीमारी को मिटाने के लिए सीधा खयाल नहीं है। वही शूद्रों के साथ, हरिजनों के साथ चला सिलसिला।

एक और मित्र ने पूछा है, कि आपका शंकराचार्य वर्णाश्रम के संबंध में जो कहते हैं, शास्त्र जो कहते हैं—उस संबंध में क्या मत है?

मेरा क्या मत होता है, यह भी पूछने की जरूरत है। मनुष्य और मनुष्य के बीच भेद डालने वाले सारे शास्त्र अपराधी हैं। मनुष्य और मनुष्य के बीच किसी भी तरह का ऊंच-नीच का विचार करने वाला कोई भी शास्त्र शोषितों के द्वारा लिखा गया होगा। वह किन्हीं ऋषि-मुनियों की बात नहीं हो सकती। और कोई भी, मनुष्य और मनुष्य के बीच, किसी भी तरह की ऊंच-नीच की धारणा को कायम रखना चाहता हो, तो वह क्रिमिनल है—अपराधी है। एक चोर के साथ जो हम व्यवहार करते हैं, एक हत्यारे के साथ हम जो व्यवहार करते हैं उससे भी ज्यादा सजग इस तरह के अपराधियों के प्रति होना आवश्यक है। क्योंकि एक चोर क्या नुकसान पहुंचा सकता है? इधर का पैसा उठाकर उधर रख सकता है। और क्या फर्क कर सकता है? एक घर की चीज दूसरे घर से रख आ सकता है। एक हत्यारा क्या फर्क कर सकता है? एक आदमी जो दस-बीस साल बाद मरता है उसे आज मार सकता है। लेकिन अगर कोई आदमी वर्ण-व्यवस्था जैसी बात की ताईद करता है

और सिफारिश करता है, तो करोड़ों-करोड़ों लोगों के जीवन को नर्क बनाने का ि जम्मेदार ठहरता है। ऐसे आदमी—ऐसे विचार—ऐसे शास्त्र—सब अनादृत होने चाहिए । उनकी कोई जगह नहीं होनी चाहिए।

लेकिन यह मुल्क बहुत बेईमान है। शंकराचार्य पुरी के अगर कहेंगे, तो उनका विर ोध किया जाएगा। लेकिन जिन शास्त्रों के आधार पर वह कह रहे हैं उन्हीं शास्त्रों की पूजा चलती रहेगी। यह कैसा मूल्य है? ये कैसे लोग हैं। शंकराचार्य कहते है, तो उनका विरोध करते हैं आप। और जिन शास्त्रों के आधार पर वह कहते है उन शास्त्रों की पूजा जारी है। तो फिर समझ में आने पाला मामला नहीं दिखता। फि र कोई बेईमानी दिखती हैं। ऐसा दिखता है, कि समय की हवा बदल गयी, इसलि ए शंकराचार्य का विरोध भी नहीं करते हैं। लेकिन चित्त नहीं बदला। इसलिए शास् त्र की पूजा भी करते हैं। शंकराचार्य का क्या कसूर है? इतना ही कसूर हो सकता है कि उनके पास कोई अपनी बुद्धि नहीं मालूम पड़ती। शास्त्र ही उनकी बुद्धि है। और कोई कसूर नहीं मालूम पड़ता है। वे एक टेप रेकार्ड मालूम होते हैं। शास्त्र में जो लिखा है, वह दोहराते हैं। उनका क्या कसूर है? लेकिन सारा मुल्क उन पर टूट पड़ा। और उन सारे शास्त्रों की पूजा जारी रहेगी, तो फिर यह उचित नहीं है । यह अन्यायपूर्ण है। यह ठीक नहीं है। शास्त्रों से मुक्त होने की जरूरत है। सच त ो यह है, कि अतीत से मुक्त होने की जरूरत है। क्योंकि उस अतीत ने ही यह स ारी की सारी नासमझियां पैदा की। उस अतीत की जड़ें—वह जो बीत गया है हमा रा अतीत का इतिहास है। उसमें इन सब रोगों के कीटाणु हैं। उसको तो हम गौर व से गौरवान्कित करते हैं। उसका तो हम शोरगुल मचाते हैं पूरा। उसको तो हम चाहते हैं कि रामराज्य फिर से आ जाए। रामराज्य फिर से आ जाए तो फिर शं कराचार्य ठीक कहते हैं। फिर आप सब गलत कहते हैं। अगर रामराज्य फिर से अ ाएगा, तो शूद्र होगा। और यह भी होगा कि कोई शूद्र वेद वचन नहीं सुन सकेगा। और शूद्र अगर वेद के वचन सुन लेगा, तो उसके कान में शीशा पिघलाकर डाला जाएगा। बिलकुल डाला जाएगा। अगर रामराज्य लाना है तो इसकी तैयारी रखना । या फिर रामराज्य जैसी बेकार बातों मग मत पड़ना। गया सो गया। वह अब न हीं लौटाया जा सकता है। न लौटाने की जरूरत है। लेकिन हमारे मुल्क का पूरा ि चत्त अतीत से बंधा है। और सारी बीमारियां जो अतीत ने दी हैं उनसे हम छूटना चाहते हैं—और अतीत से छूटना नहीं चाहते। तो एक तरह की चीज, एक तरह की तनाव की स्थिति मुल्क के चित्त के सामने पैदा हो गयी है। और यह ध्यान रहे , यह मत सोचना कि हम ऐसा कर सकते है कि अतीत का जो अच्छा है वह बच ा लें। और जो बुरा है वह छोड़ दें। इसे थोड़ा समझ लेना।

हर समय एक आर्गनिक यूनिटी है। ऐसा नहीं है कि एक आदमी की आंखें बहुत प यारी लगती हैं तो आंखें बचा लो। बाकी आदमी को जाने दो। ऐसा नहीं हो सकत ा कि आदमी का हृदय हमें बड़ा प्यारा लगता है तो हृदय बचा लें। बाकी हमको नहीं जंचता—जाने दें। आदमी एक आर्गनिक इकाई है, इकट्ठी इकाई है। हर युग,

समय, हर सदी, हर शास्त्र, हर विचार, हर धर्म एक आर्गनिक यूनिटी है। अगर जाएगा तो पूरा जाएगा। अगर बचेगा तो पूरा बचेगा। लेकिन हम इस मुल्क में यह कर रहे हैं—कि हम कह रहे हैं कि जो गलत है उसे छोड़ दें, जो ठीक है, उसे हम बचा लें। लेकिन जिस चित्त से वह ठीक पैदा हुआ था उसी चित्त से वह गलत पैदा हुआ था। वह गलत और ठीक किसी एक ही चीज के दो हिस्से हैं। और इसलिए हम बड़ी मुश्किल में पड़े। हम हमेशा यह खयाल करते हैं कि कुछ अच्छा है, उसे बचाते चलें। कुछ बुरा है, उसे छोड़ते चलें। ऐसा नहीं होता। पिछली इकाई को छोड़ना होता है। नयी इकाई को जन्म देना होता है। पिता मरता है तो ऐसा नहीं होता कि पिता की खोपड़ी बहुत अच्छी थी इसलिए बेटे की खोपड़ी अलग रखो—पिता की खोपड़ी जोड़ दो। पिता पूरा मरता है। बेटा पूरा पैदा होता है। हर युग को पूरा मरना चाहिए, ताकि हर नया युग पूरा पैदा हो सके। अगर पुराने युग में से कुछ बचाने की कोशिश चलती है तो नए युग के हाथ-पैर पंगु हो जाते हैं—वह पैदा नहीं हो पाते। हिंदुस्तान बहुत दिन से इस मुश्किल में पड़ा हुआ है। पुराना यहां मरता ही नहीं हैं वे तो ठीक ही हैं—साफ हैं। लेकिन वे जो पुराने के पक्षपाती के विरोधी हैं, वे भी पुराने के पक्षपाती हैं। इसलिए इस मुल्क के मस्तिष्क में साफ-साफ नहीं हो पाता कि हम क्या करें? क्या न करें?

जो लोग शंकराचार्य का विरोध करेंगे और कहेंगे, शंकराचार्य गलत कहते हैं, वह भी शास्त्रों को उठाकर यह सिद्ध करने की कोशिश करेंगे कि शास्त्रों में शूद्र नहीं है। लेकिन शास्त्रों में सिद्ध करने की कोशिश करेंगे। यह नहीं कहेंगे कि होगा शास्त्रों में, लेकिन शास्त्रों में हमें प्रयोजन क्या? कोई ठेका ले लिया है शास्त्रों ने, सदा के लिए कि हम उनसे बंध हैं? मनु महाराज ने कोई ठेका लें लिया है कि अब आने वाली दुनिया कभी भी उनसे मुक्त नहीं हो सकेगी। मनु महाराज मर गए। उनका विचार भी मर जाना चाहिए। सब चीजें मरनी चाहिए, अगर जिंदगी को जिंदा रखना है। जैसे आदमी बदलते हैं, वैसे ही समाज, शास्त्र, विचार सब बदलने चाहिए। सभ्यता को भी करना सीखना चाहिए। और जो सभ्यता करना नहीं सीखती उसका नया जन्म होना बंद हो जाता है। सभ्यताएं भी मरती हैं। लेकिन इस देश में हमें यह खयाल है कि हमारी सभ्यता कोई बहुत अदभुत बात है। रोम मर गया, बेबीलोन मर गया, सीरिया मर गया, इजिप्त मर गया। हम? हम मरते ही नहीं। कहीं ऐसा तो नहीं है कि मरे-मराए हो इसलिए मरते नहीं हों। सिर्फ मरा हुआ नहीं मरता है। ध्यान रहे मरे हुए आदमी को एक फायदा होता है, फिर नहीं मर सकता है। फिर मरने का सवाल ही नहीं है। जिंदा कौम मरती भी है, जन्मती भी है। जिंदगी का लक्षण है यह। युग मरने चाहिए, ताकि नए युग पैदा हो सकें। शास्त्र भी मरने चाहिए, ताकि नए शास्त्र जन्म ले सकें। विचार भी विदा होने चाहिए, ताकि नए विचार आ सकें। यह धारा बढ़नी चाहिए, रुक नहीं जानी चाहिए। लेकिन यह सब रुकी हुई है। शंकराचार्य कहते हैं, हमारी किताब में यह लिखा हुआ है। उनका भी दावा किताब का है। उनके विरोधी कहते हैं, नहीं, उस किताब का

दूसरा मतलब है। लेकिन किताब के दोनों दावेदार हैं। ये दोनों दुश्मन हैं देश के। इनमें एक नहीं है दुश्मन। शंकराचार्य ही नहीं, वह दूसरा भी है। क्योंकि वह यह कहता है, नहीं लिखा। लेकिन अगर सिद्ध हो जाए कि लिखा है, फिर वह भी रा जी हो जाएगा। पर किताब से मुक्त होने की हिम्मत किसी की भी नहीं है।
यह क्या मामला है? क्या हमारे पास कोई बुद्धि सोचने वाली नहीं है--जो हम उध ार बुद्धि से ही सोचते रहें। क्या ऐसा कुछ हो गया है कि संपूर्ण ज्ञान प्राप्त हो गया है, अब आगे कोई प्राप्त नहीं होना है? ज्ञान रोज आगे बढ़ेगा। जो कौम तय कर लेगी कि हम आगे नहीं सोचेंगे वह कौम सड़ने लग जाएगी। और ध्यान रहे, सभ्य ता जितनी पुरानी हो जाती है उतनी ही पाखंडी हो जाती है। नयी सभ्यता में ता जगी होती है। नयापन होता है। ईमानदारी होती है। पुरानी सभ्यता बेईमान हो जा ती है। उसका कारण है। अनुभव चालाक कर देता है। एक बच्चा पैदा होता है। ब च्चे में इनोसेंस होती है, निर्दोषिता होती है, ताजगी होती है। वही बच्चा जब सत्त र साल के बाद बूढ़ा हो जाएगा तो चालाक हो जाता है। कनिंग हो जाता है। बूढ़ा आदमी और निर्दोष खोजना, जरा मुश्किल है। बच्चा और चालाक खोजना जरा मुश्किल है। और जो बच्चे और बूढ़े के संबंध में सच है वही नयी सभ्यता और पुर ानी सभ्यता के संबंध में सच है। यह हमारी पूरी सभ्यता चालाक हो गयी है। इस के इतने अनुभव हैं कि अनुभवों ने इसे बेईमान कर दिया है। और अनुभवों का ढेर लगता चला जाता है। नई सभ्यताएं ताजी होती हैं। जिंदा होती हैं। ताकतवर हो ती हैं कुछ करने की हिम्मत होती है। हममें कुछ भी करने की हिम्मत नहीं है। शू द्र जैसी सड़ी और गिरगिराई चीज को गिराने की हिम्मत नहीं। उसको भी हम पू छते हैं कि कैसे गिराए। उसको भी हम पूछते हैं कि शूद्र को हम कैसे मिटाए? शू द्र को मिटाने के लिए क्या करना पड़ेगा? कुछ करना पड़ेगा। सिर्फ मुल्क सोच ले, और शूद्र आज मिट गया। मिटाने के लिए कुछ उपाय करना पड़ेगा? शूद्र कोई ट ीबी, कोई कैंसर है कि कोई इलाज करना पड़ेगा? सिर्फ मान्यता है। एक आदमी शूद्र है, सिर्फ यह मान्यता है। मान्यता को मिटाने के लिए भी कुछ करना पड़ेगा? सिर्फ मान्यता छोड़ देनी पड़ेगी। लेकिन वह मान्यता भी नहीं छोड़ पा रे हैं। वह मा न्यता भी नहीं मिटा पा रहे हैं। तो हद हो गयी। शायद हम कुछ भी करने में सम र्थ नहीं रहे गए हैं।
मैं किसी आदमी को नीचा-ऊंचा नहीं मानता हूं।
एक मित्र ने पूछा है कि ये शूद्र पैदा क्या हो गए हैं? ये हरिजन पैदा क्यों हो गए हैं?
पैदा हो जाने का कारण है। दुनिया में वर्ग सदा से हैं। क्लासेस सदा से हैं। लेकिन व्यर्थ वर्ण? वर्ण हिंदुस्तान की अपनी ईजाद है। वर्ण दुनिया में कहीं भी नहीं है। व र्ग सब जगह है--गरीब है अमीर है। लेकिन शूद्र और ब्राह्मण और क्षत्रिय और वैश्‍ य जैसा वर्ण कहीं भी नहीं है। वर्ण कहीं भी नहीं है। वर्ग का मतलब यह होता हैं कि कोई आदमी गरीब है। वह चाहे तो कल अमीर भी हो सकता है। कोई रुकाव

ट नहीं है। फिलूडिटी है एक—एक तरलता है। अमीर गरीब हो सकता है। गरीब अमीर हो सकता है। हिंदुस्तान ने एक बहुत चालाकी का काम किया है। उसने गर ीबी और अमीरी के बीच फिलूडिटी—जो तरलता थी, वह खत्म कर दी, और उस ने निश्चित वर्ण पैदा कर दिए। वर्ण का अर्थ है—ठोस हो गया वर्ग। शूद्र को, गरीब को, उसने कह दिया, दीन को, हीन को, उसने कह दिया कि बस, तू जम गया। अब तेरे भीतर से बदलाहट नहीं हो सकती। तू ऊपर नहीं जा सकता। ऊपर की क्लासेस को इससे फायदा हुआ क्योंकि नीचे की क्लासेस का कंपटीशन—प्रतियोगिता खत्म हो गयी। हिंदुस्तान ने एक तरकीब ईजाद की प्रतियोगिता खत्म करने की। करोड़ों शूद्रों से प्रतियोगिता खत्म हो गयी। अब उनके बेटे ब्राह्मणों के बेटों से संघ र्ष कर सकेंगे ऋषि होने का। उनके बेटे वैश्यों के बेटे से धनपति होने का संघर्ष न कर सकेंगे। अब उसके बेटे बहादुरों की तरह लड़ सकेंगे, क्षत्रियों से संघर्ष न कर सकेंगे। एक बड़े वर्ग को, नीचे के विराट वर्ग को हमने बिलकुल जमा दिया और द्वार बंद कर दिए कि तुम कहीं आ-जा न सकोगे। ऊपर के वर्गों को लाभ हुआ। ि फर क्रमशः हम जमाते चले गए। शूद्र के बाद हमने वैश्य को जमा लिया, और उ ससे कह दिया, धन तेरी दुनियादारी है। इससे आगे तू नहीं बढ़ सकता है। यश अ ौर ज्ञान तेरी दुनिया है। क्षत्रियों को कह दिया कि यश तेरी दुनिया है लेकिन ज्ञान तेरी दुनिया नहीं है। और सबके ऊपर वह जो ज्ञानवान है, वह जो पंडित है, जो ब्राह्मण है, वह बैठ गया। ये वर्ग जमा दिए, इसलिए प्रतियोगिता खत्म हो गयी और समाज जड़ हो गया। हिंदुस्तान को वर्ण से जितनी मृत्यु मिली, जितनी जड़ता मिली उतनी किसी और चीज से नहीं मिली। इसका फिर परिणाम अनंत रूपों से घातक हुआ।

हिंदुस्तान पर हमला हुआ। हिंदुस्तान पर हमला हुआ तो शूद्र ने कहा, हमें क्या म तलब है? शूद्र को क्या मतलब है? भंगी भंगी रहेगा, चाहे मुसलमान दिल्ली मग बैठे कि हिंदू बैठे—कि अंग्रेज बैठे। भंगी को क्या फर्क पड़ने वाला है? भंगी भंगी रहे गा। भंगी ने कहा, हमारा भाग्य तो तय है। तो कोई भी राजा हो, हमें क्या हानि है। हम तो अपने चलते चले जाएंगे। हम जो करते हैं, करते चले जाएंगे। हिंदुस्त ान की विराट जनता वर्णों के कारण हिंदुस्तान के जीवन से अरुचि से भर गयी। ि वरागपूर्ण हो गयी। हिंदुस्तान की वर्ण व्यवस्था ने हिंदुस्तान में ऐसे तबके बांट दिए कि एक आदमी को कोई जरूरत न रही चिंतित होने की। सिर्फ थोड़े से लोगों को । चिंता थी कि हम अपने राज्य को बचाए। बाकी पूरे देश को प्रयोजन न था। गर ीब को क्या प्रयोजन है अमीरों के झगड़े से? कोई प्रयोजन नहीं है। वही तो अभी भी हो गया। फिर वही हो गया। अंग्रेज हिंदुस्तान से गए। गरीबों ने सोचा था। हमें कुछ मिल जाएगा। फिर उनको पता चला, कुछ नहीं मिलता है। अंग्रेज पूंजीपति बदल जाता है। हिंदू पूंजीपति उसकी जगह बैठ जाता है। गरीब अपनी जगह है। व ह वहीं के वहीं हैं। उसे कोई फर्क नहीं पड़ता है।

अमीरों के झगड़े हैं—ऊपर के झगड़े हैं। नीचे के आदमी को क्या मतलब है? यह ि हदुस्तान के हजारों वर्ष के शूद्रों की वर्ण व्यवस्था की टूटने ऐसी स्थिति जमा दी ि क हिंदुस्तान में कोई सामाजिक धारणा, कोई राष्ट्र,कोई नेशनल, कोई भी पैदा नह ीं हो सका। लेकिन जो लोग इनके विरोध में खड़े हैं वह भी मौलिक आधारों के ि वरोध में नहीं हैं। गांधीजी चाहते थे कि अछूत मिट जाए। लेकिन गांधीजी कर्म के सिद्धांत के संबंध में एक शब्द भी विरोध में नहीं बोले। और शायद आपकी खया ल में भी न हो कि हिंदुओं ने जो व्यवस्था की है, हिंदुओं का दिमाग इतना सिस्टम मेकर रहा है, उन्होंने इतनी व्यवस्था की है, सिद्धांतों के मुकाबले—सिद्धांत बनाने के लिए हमसे बढ़िया लोग दुनिया में खोजना मुश्किल है। हम ऐसे गजब के सिद्धां त बनाते हैं। हम इतने कुशल हैं सिद्धांत बनाने में कि जिसका कोई हिसाब नहीं। शूद्र हमने ऐसे ही खड़ा नहीं कर दिया। हमने पूरी मनोवैज्ञानिक, दार्शनिक पृष्ठभूमि बनायी है। हमारा कहना यह है कि जो आदमी जैसे कर्म करता है वैसा उसे जन्म मिलता है। शूद्र वे हैं, जिन्होंने पाप किए हैं। वह शूद्र वर्ग में पैदा होते हैं। ब्राह्मण वे हैं जिन्होंने पुण्य किए हैं। वह ब्राह्मण वर्ग में पैदा होते हैं। पिछले जन्मों में जिन् होंने जैसे कर्म किए है उनके चार विभाजन, और उन चार विभाजनों में लोग पैदा होते हैं। इसलिए शूद्र भी बेचारा राजी हो गया। उसने कोई बगावत नहीं की। उ सने कहा—ठीक है। हम पिछले जन्म में बुरे कर्म किए होंगे, इसलिए हम शूद्र हो ग ए हैं। अब अच्छे कर्म करेंगे तो अगले जन्म में ब्राह्मण हो जाएंगे। अगले जन्म की आशा में वह आज शूद्र होने को राजी हो गया। हिंदुस्तान का शूद्र राजी है। अगले जन्म की प्रतीक्षा कर रहा है और हिंदुस्तान का दिमाग बेईमान है। जिसको भी र ाजी करवाना हो उसे अगले जन्म का प्रलोभन दे दो। वह राजी हो जाता है।

जब तक यह कर्म की विचार-सरणि न टूटे और जब तक हम इसकी पुनःव्याख्या न करें तब तक शूद्र को मुक्त होना बहुत मुश्किल मामला है। और बड़ा मजा तो यह है, कि जिससे उसे मुक्त होना है वह उसी से बंधने की पूरी कोशिश कर रहा है। विनोबा जी, गांधीजी उसको, उन्हीं मंदिरों में ले जाने के लिए प्रवेश दिलवा रहे हैं, जिन मंदिरों से उसे मुक्त होना चाहिए। यह बड़े मजे की की बात हैं। जिन हिंदू पुरोहितों से मुक्त होना हैं—गांधीजी और विनोबा जी कह रहे हैं कि उन मंि दरों में शूद्र का प्रवेश होना चाहिए। यह बड़ी क्रांति की बात है कि मंदिर में शूद्र का प्रवेश हो। किसके मंदिर में? उसी मंदिर में, जिसने उसे शूद्र बनाया। उसी पुरो हितों के मंदिर में जिसने उसको हजारों वर्ष तक पीड़ित किया और शोषित किया। मैं तो कहूंगा, एक शूद्र को किसी मंदिर में नहीं जाना चाहिए। अगर सारे ब्राह्मण पैर पड़ें तो भी नहीं जाना चाहिए। क्योंकि उस मंदिर में क्यों जाना जिस मंदिर ने तुम्हें तोड़ा और बर्बाद किया, और शोषण किया। लेकिन, गांधीजी और उनके सब साथी कहते हैं कि मंदिर का द्वार खोलो। हम शूद्र को मंदिर में ले जाएंगे। य ह बड़ी क्रांति हो रही है। शूद्र को मंदिर में ले जाने की। यह ब्राह्मण का ढीला पंज ा जो हो रहा है उसको फिर कसे जाने की तरकीब है। फिर ब्राह्मण के हाथ में प

हुंच जाएगा यह शूद्र उसके मंदिर में जाते ही। आज वर्ण टूटने के करीब आ गए हैं। व्यवस्था टूटने के करीब आ गयी है। उसको फिर से नयी शक्ल देकर, फिर उसको उसी व्यवस्था के भीतर रखने की कोशिश चल रही है। डर है कि वहीं शूद्र हिंदुओं के बाहर न चला जाए।

लेकिन शूद्र को हिंदू के भीतर रहने की जरूरत क्या है? सच तो यह है किसी को भी हिंदू होने की जरूरत क्या है? किसी को मुसलमान होने की जरूरत क्या है? आदमी होना पर्याप्त है। और जिसको आदमी होगा पर्याप्त नहीं मालूम होता—वह हिंदू और मुसलमान होने से कुछ और विकसित नहीं जाएगा। आदमी होना काफी है। हिंदुस्तान में एक क्रांति की जरूरत है। शूद्र तो कह ही दें कि अब हम हिंदू नहीं हैं। लेकिन बहुत से वे लोग जो शूद्र नहीं हैं। और बुद्धिमान हैं, वे कह दे कि हम हिंदू नहीं हैं। और बहुत से वे लोग जो बुद्धिमान हैं, कह दें कि हम मुसलमान नहीं हैं। बहुत से वे लोग जो बुद्धिमान हैं, कह दे हम जैन और ईसाई नहीं हैं। हम आदमी हैं। और अगर हमें खोज लगानी है सत्य की। अगर हम प्रभु को खोजना है, तो हम खोजेंगे। लेकिन हिंदू के मंदिर में नहीं, मुसलमान के मंदिर में नहीं। इतनी बड़ी दुनिया उसका मंदिर है, हम यही खोजेंगे। हम क्या किसी मंदिर की बंद दीवरों के भीतर जाएं इतना विराट मंदिर है उसका कि हम उसका दर्शन यहीं करेंगे। लेकिन इसकी हिम्मत शूद्र भी नहीं जुटा पाते हैं। वह भी कहते हैं, हम हरिजनों को अधिकार दो। हम हरिजनों को जगह दो। मंदिर का द्वार खोलो। हम भीतर प्रवेश करेंगे। तुम किसको अधिकार मांगते हो? और ध्यान रहे, अधिकार मांगने वाले कभी भी स्वतंत्र हो सकते हैं? जिनसे अधिकार मिलेंगे, वे उनके परतंत्र बने ही रहेंगे। और जिन्होंने हजारों वर्षों तक दिमागी सांचे बनाकर आदमी को कमा है वे इतने होशियार हैं कि वे नए सांचे बना लेंगे और फिर कस लेंगे।

नहीं, सब जाल तोड़कर बाहर आने की जरूरत है। किसी हिंदू मंदिर में किसी शूद्र को जाने की जरूरत नहीं है। और किसी शूद्र को अपने को हरिजन कहने की जरूरत नहीं है। बस, आदमी कहना काफी है। तो मुझसे मत पूछें कि मैं हरिजन के घर में क्यों नहीं ठहरता? मैं घर मग ठहरता हूं। हरिजन और गैर-हरिजन से मुझे कोई मतलब नहीं है। आप आ जाएं और मुझसे कहें कि ले मेरे घर तो मैं ठहर जाऊंगा। लेकिन अगर जरा भी आपको भ्रम हो और आप प्रचार करे कि मैं हरिजन के घर में ठहरा हूं, तो ऐसे पागलपन में, मैं नहीं जाने को राजी हूं। यह पागल-घर है। आदमी का घर होता है।। मैं मेहमान बन सका हूं आदमी का, हरिजन व गैरह से मुझे कोई मतलब नहींअ है। हजार कारण हो सकते हैं, लेकिन एक ही कारण काफी है।

एक मित्र ने पूछा है कि विचार छोड़ दे, कैसे छोड़े दे? और विचार छूटेगा कैसे? सुबह आपने कहा कि विचार छोड़ दो और निर्विचार हो जाओ; लेकिन विचार कैसे छोड़ दें?

इसे थोड़ा समझना उपयोगी है। मैं यह मुट्ठी बांधे हुए हूं और आपसे आकर मैं पूछूं कि यह मुट्ठी मुझे खोलनी है, कैसे खोलूं? तो आप क्या कहेंगे? आप कहेंगे—बांधो मत—मुट्ठी खुल जाएगी। बांधो मत, खोलने के लिए कुछ भी नहीं करना पड़ता है। बांधने के लिए कुछ करना पड़ता है। बांधने के लिए मुझे श्रम करना पड़ रहा है। अगर मैं न बांधूं तो मुट्ठी खुल जाएगी। खुला होना मुट्ठी का स्वभाव है। इसमें दो बातें समझ लेना जरूरी है। एक, विचार हम कर रहे हैं, पकड़े हुए हैं इसलिए चल रहा है। तो मत पूछें कि हम विचार को कैसे छोड़े? यह पूछें कि हम विचार को कैसे पकड़े हुए हैं। और पकड़ने की तरकीब खयाल में आ जाए तो छूटना अपने आप हो जाएगा। हम पकड़े कैसे हुए हैं? पकड़ने की तरकीब है। तादात्म्य—आइडेंटिटी। हम प्रत्येक विचार के साथ अपना तादात्म्य कर लेते हैं। क्रोध आया और आप कहते हैं मुझे क्रोध आ गया। आप फैसला कर पाते कि मैं अलग हूं और क्रोध अलग है। एक विचार भीतर चल रहा है और आप उस विचार के साथ एक हो जाते हैं, और लगता है, यही मैं हूं। कभी आपने खयाल किया, आप सादा पृथक हैं। आपके विचार अलग चल रहे हैं। आकाश में एक नीला बादल उड़ा चला जा रहा है। आप देख रहे हैं, आप यह कहते हैं कि मैं नीला बादल हूं? आप कहते हैं वह नीला बादल रहा—देखने वाला मैं हूं।

मन के आकाश पर एक विचार चल रहा है। आप फौरन कहते हैं, मैं यह हूं। झंझट मग पड़ गए। मन के आकाश पर विचार उतनी दूरी पर चल रहा है। आपसे, जितना उस आकाश पर एक बदली का टुकड़ा चल रहा है। आप फिर भी अलग हैं। आप दूर खड़े साक्षी से ज्यादा नहीं हैं। यह हमें स्मरण करना होना, निरंतर कि विचार से मैं पृथक हूं। अलग हूं। और कोई विचार में मैं जुड़ा हुआ नहीं हूं। लेकिन हम? हम विचर से अपने को जोड़न की आदत के इतने आदी हो गए कि हमें खयाल हर पहीं आता। जब क्रोध आता है, तो बजाय इसके कि आप कहें कि मेरे सामने क्रोध आ गया है, आप कहते हैं, मैं क्रोधी हो गया हूं। आप गलत कहते हैं। जब आपके सामने सुख आ जाए तो बजाय यह कहने के कि मेरे सामने सुख आ गया, आप कहते हैं, मैं सुखी हो गया हूं। अगर आप सुखी हो गए हैं तो अब कभी दुखी न हो सकेंगे? लेकिन हम जानते हैं कि सुख चला जाएगा, दुख आ जाएगा।

एक कमरे में मैं सुबह बैठ जाऊं। सूरज निकले, किरणें भर जाएं, तो मैं यह नहीं कहता कि मैं प्रकाश हो गया हूं। मैं कहता हूं कमरे में प्रकाश भर गया है, मैं प्रकाश को देखता हूं। फिर सांझ आती है, अंधेरा भर जाता है। मैं कहता हूं कि मैं अंधेरा हो गया हूं? मैं कहता हूं, अब अंधेरा भर गया, अब मैं अंधेरे को देख रहा हूं। मन में विचार आते-जाते हैं। सुख-दुख आते-जाते हैं। क्रोध, प्रेम, घृणा आते-जाते हैं। भाव आते हैं, जाते हैं और वह जो बैठा हुआ है भीतर, वह हरेक के साथ कहने लगता है कि मैं हो गया हूं। तब पकड़ शुरू हो जाती है। क्लिबिंग शुरू हो

जाती है। फिर मुक्त होना बहुत मुश्किल हो जाता है। इसलिए मैंने सुबह कहा—ध्य
ान का अर्थ है—साक्षी-भाव। मैं देखूं, जो आ रहा है।
एक सम्राट ने अपने वजीरों को कहा कि मैं तुमसे एक ऐसा सूत्र चाहता हूं जो तो
 काम हर स्थिति में काम दे सके। सुख आए तो काम दे, दुख आए तो काम दे।
मुझे एक सूत्र इस ताबीज पर लिख दो जो हर स्थिति में काम दे। वजीर बड़ी मुश्
कल में पड़ गए। क्या लिखें? ऐसा कौन सा सूत्र है जो हर जगह काम दे। फिर उ
न्होंने एक फकीर को पूछा। फकीर ने एक ताबीज दे दिया और उसने एक कागज
की पुड़िया लिखकर रख दी। और कहा कि जब सुख-दुख आए, इसे खोलकर पढ़
लेना। राजा पर सुख आया, उसने ताबीज खोला। दुख आया, ताबीज खोला। उसमें
 सिर्फ एक छोटा सा वाक्य लिखा था—लिखा था—दिस टू विल पास। यह भी चला
जाएगा। इतना ही लिखा था उस कागज पर, दिस टू विल पास। सुख आया, राजा
 ने पढ़ा, यह भी चला जाएगा। और राजा पृथक हो गया। क्योंकि चला जाएगा व
ह मैं नहीं हो सकता हूं। मैं तो बच रहूंगा। दुख आया और राजा ने पढ़ा, यह भी
चला जाएगा, और राजा अलग हो गया। क्योंकि जो चला जाएगा वह तो मैं नहीं
हूं। मुझ पर चीजें आती हैं—जाती हैं। मैं तो अलग हूं। इस पृथकता का खोजना ही
 साक्षी भाव है। तो यह मत पूछे कि हम विचार को कैसे रोकें। रोकने की कोई
जरूरत नहीं है। विचारों को आने दें, आने दें। आप पृथक हो जाएं। आप भिन्न हो
जाएं। आप जान सकें कि मैं अलग हूं, तो विचार धीरे-धीरे आप विसर्जित हो जा
ते है। उन पर पकड़ छूट जाती है। फिर वही रह जाता है जो है, और जो अकेला
 है। उस अकेले में जो अनुभव होते हैं, निर्विचार के वे ध्यान के अनुभव है।
लेकिन हम क्या करते हैं—विचार से लड़ते हैं। लड़कर तो आप कभी विचार को अ
लग नहीं कर सकते। ध्यान रहे—लड़ना तो बुलाने का उपाय है। अगर किसी विचा
र से आप लड़े और आपने कहा, इससे में अलग करके रहूंगा। तब फिर आप मुश्
कल में पड़ जाएंगे। फिर उस विचार से कभी आप मुक्त न हो सकेंगे। आप जितन
ा लड़ेंगे उतना ही आएगा। क्योंकि जितना आप लड़ेंगे उतना ही आप मान रहे हैं ि
क मैं उससे एक हूं। नहीं तो लड़ेंगे क्यों, लड़ने की क्या जरूरत है? वह अलग है।
 मैं अलग हूं। वह आया है—चला जाएगा। मुझे क्या प्रयोजन है? लेकिन हम लड़ते
 हैं।
मैंने सुना है, तिब्बत में एक फकीर था। उसके पास एक आदमी आया। और उसने
 कहा, मुझे एक मंत्र दे दें। मैं कोई सिद्धि करना चाहता हूं। फकीर ने कहा। मेरे
पास कोई मंत्र नहीं। लेकिन नहीं माना वह व्यक्ति पैर पकड़ लिए, हाथ जोड़ने ल
गा। दे ही दें। फकीर ने एक कागज पर मंत्र दे दिया और कहा, उसे पांच बार प.
ढ लेना। फिर तो वह आदमी भागा। उसने लौटकर धन्यवाद भी न दिया। वह मंदि
र की सीढ़ियां उतरता था, तब फकीर चिल्लाया कि ठहरो, एक बात भूल गया,
एक शर्त बताना भूल गया। ध्यान रहे, बंदर का स्मरण न आए जब तुम यह मंत्र
पढ़ो। अगर बंदर का स्मरण आया, मंत्र बेकार हो जाएगा। बंदर दुश्मन है इस मंत्र

का। उस आदमी ने कहा, मुझे कभी बंदर का स्मरण जिंदगी हो गयी नहीं आया। इसकी फिकर मत करो। लेकिन डुल हो गयी। पूरी सीढ़ियां उतरना भी मुश्किल हो गया। बंदर का स्मरण शुरू हो गया। रास्ते पर घर की तरह चला और बंदर चारों तरफ मन में घूमने लगे। वह आंख बंद करता है और बंदरों को भगाता है। लेकिन बंदर जोर से आते है। घर पहुंचा। स्नान करता है—लेकिन बंदर तो घिरते चले जाते हैं। रात हो गई। मंत्र लेकर बैठता है—लेकिन भीतर बंदर है। वह घबड़ा गया। उसने कहा, इन बंदरों से कोई संबंध कभी नहीं रहा। आज क्या हो गया है ? क्या ये बंदर पांच मिनिट के लिए भी न रुकेंगे? रात भर मुश्किल हो गयी। लेकिन पांच मिनिट के लिए बंदर से छुटकारा नहीं। सुबह तो पागल हो गया। जाकर मंत्र वापस लौटा दिया उस फकीर को। कहा—क्षमा करो—अगले जन्म में हो सकती है अब यह सिद्धि। फकीर ने कहा—क्यों, क्या बात है? उसने कहा, वह बंदर जान लिए ले रहे हैं। अब उनसे छुटकारा इस जन्म में नहीं हो सकता। और तुम्हें अगर मालूम था कि बंदर की याद आए, तो एक दिन रुक जाते। बात में बता देते। तो यह सिद्ध हो जाता मंत्र। अब यह नहीं हो सकेगी। उस फकीर ने कहा, मैं क्या कर सकता हूं, यही शर्त है। यह शर्त पूरी करनी जरूरी है।

क्या हो गया उस आदमी को, बंदर से छुटकारा नहीं होता। जिस विचार से हम लड़ते हैं, उस विचार पर हम केंद्रित हो जाते हैं। जिस विचार से हम लड़ते हैं उस विचार से हम हिप्नोटाइज्ड हो जाते हैं। जिस विचार से हम हटना चाहते हैं, सारा चित्त उसी पर केंद्रित हो जाता है। किसी को भुलाने की कोशिश करो, फिर मुश्किल हो जाएगी। वह नहीं भूलेगा। प्रेमियों से पूछो, प्रमिकाओं को भुलाने की कोशिश बहुत मुश्किल हो जाती है। जिनको नहीं भुलाना, वे भूल जाते हैं। जिनको भुलाना है, वे कभी नहीं भूलते। चित्त की आदत है। जिससे लड़ोगे, चित्त वहीं केंद्रित हो जाएगा। एक नया-नया आदमी साइकिल सीखता है। रास्ते पर एक पत्थर पड़ा है। इतना बड़ा रास्ता है, सात फीट चौड़ा, लेकिन वह पत्थरों से, दिखा, कि वह डरता है। कहीं पत्थरों से न टकरा जाऊं। अब कोई निशानेबाज भी सात फीट रास्ते पर पत्थर से टकराना चाहे तो चूकने की संभावना ज्यादा है। लेकिन ये सज्जन टकराएंगे। ये नहीं बच सकते। सात फीट रास्ता अब इनको दिखायी न पड़ेगा। अब इनको वह पत्थर ही दिखायी पड़ेगा। अब इनका चाक घूमा, इनके प्राण घबड़ाए और ये हिप्नोटाइज्ड हुए उस पत्थर से। अब इनकी साइकिल चली उस तरह। ये उससे टकराएंगे।

आदमी जिससे बचना चाहता है उसी से टकरा जाता है। आदमी जिससे भागता है उसी से घिर जाता है। पूछो ब्रह्मचारियों से—सिवाय स्त्रियों के और किसी का दर्शन नहीं होता। हो ही नहीं सकता। अगर भगवान भी प्रकट होंगे तो स्त्री की ही शक्ल में प्रकट होंगे। और किसी शक्ल में वे प्रकट नहीं हो सकते। ब्रह्मचारी का कष्ट है बेचारे का, वह सेक्स से लड़ रहा है इसलिए सेक्स घिर गया है। इसीलिए तो ऋषि-मुनि स्त्रियों के लिए इतनी नाराजगी जाहिर करते हैं। यह नाराजगी किसके

लिए है? वह स्त्रियां उनको घेर लेती हैं, उनके लिए है। असली स्त्रियों के लिए नहीं। असली स्त्रियों से क्या मतलब है? ऋषि-मुनि कहते हैं। स्त्रियां नर्क का द्वार है। स्त्री से बचो। यह किससे बचने के लिए कह रहे हो? वह जो भीतर स्त्री उनक ो घेरती हैं। घेरती क्यों है? स्त्री से भागते हैं इसलिए स्त्री घेरती है। जिससे भागो गे, वह घेर लेगा। जिससे बचोगे, वह पकड़ लेगा। जिसको हटाओगे, वह आ जाएग ा। जिसको कहोगे मत आओ। वह समझ जाएगा कि डर गए हो। आना जरूरी है। वह आ जाएगा। चित्त से लड़ना, चित्त के विचार से लड़ना आत्मघातक है। फिर वही उलझन हो जाएगी। इससे बचना जरूरी है। बचेंगे कैसे? बचने के लिए आवश यक है कि विचार से लड़ो ही मत। सेक्स से मुक्त होना हो, तो सेक्स से लड़ो मत । साक्षी बनो। क्रोध से मुक्त होना हो, लड़ो मत, साक्षी बनो। जिससे मुक्त होना हो, उसे देखो और जानो कि मैं पृथक हूं—वह पृथक है। दूरी है। फासला है। दोनों के बीच अनंत फासला है। मैं अलग हूं, वह अलग है। और सचाई यही है। और ि जतनी यह स्पष्ट गहरी होगी कि मैं अलग हूं, उन्हें हंसी आएगी कि मैं किससे लडूं । जिससे कोई झगड़ा ही हनीं, जिससे कोई संबंध नहीं, उससे लड़ने की जरूरत क या है? और तब जिससे लड़ना बंद हो जाता है—जैसा मैंने कहा—लड़ने से आती है कोई चीज—न लड़ने से जाने लगती है। ब्रह्मचार्य सेक्स से लड़ने से नहीं आता। से क्स के प्रति जागने से सेक्स चला जाता है। जो शेष रह जाता है, उसका नाम ब्र ह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य सेक्स से उल्टा है। ब्रह्मचर्य सेक्स के विदा हो जाने का अभाव है । वह जो शेष रह जाता है सेक्स के चले जाने पर। लेकिन सेक्स से लड़कर कोई ब्रह्मचारी नहीं हो सकता। मुझे साधु-संन्यासी मिलते हैं। जब वे सबके सामने होते है तब वे आत्मा-परमात्मा की बात कहते हैं। फिर वह कहते हैं—अकेले में मिलना है। असली सवाल तो वही है। सबके सामने तो पूछ भी नहीं। सकते। क्योंकि सब को तो वे सांझ से सुबह तक यही बातें सिखा रहे हैं जो उनको भी नहीं हो सक ती है। और होगी भी नहीं। क्योंकि विधि हो गलत है। मैथड ही गलत है। अज्ञानपू र्ण है। अमनोवैज्ञानिक है। खतरनाक है। असंगत है। उसकी कोई संगति नहीं है जी वन के परिवर्तन से और रूपांतरण से। लड़ने की संगति है, झगड़े की संगति है। गांधीजी के आश्रम में रामायण पढ़ी जाती थी। तो एक प्रसंग आता है—वह सबको पता है प्रसंग कि सीता को रावण लेकर भाग गया है। भागते में सीता ने अपने गहरे फेंक दिए मार्ग पर। राम खोजते निकलेंगे। गहनों से पता चल सकेगा कि सी ता किस रास्ते से चुराकर ले जाए गए है। मिलन गए हैं। राम-लक्ष्मण खोजते गए हैं। गहन मिल गए हैं। लेकिन राम इतने दुःख में हैं, शोक में हैं। उनकी आंखें इ तनी आंसुओं से भरी हैं कि वह गहनों को पहचान नहीं पाते। और सच तो यह है कि कोई पति अपनी पत्नी के गहने नहीं पहचान पाएगा। पत्नी के गहने पहचानन ा बहुत मुश्किल है। पत्नी को कोई देखता नहीं है इतना और से कि उसके गहने पहचानने जा सकें। पड़ोस की पत्नी ने क्या गहने है, यह पहचाने जा सकते हैं। रा म को भी नहीं समझ में आते, कि ये गहने सीता के हैं। तो लक्ष्मण से पूछते हैं ि

क ये कहने तू पहचानता है? लक्ष्मण कहता है गहने! मैं सिर्फ पैर के गहने पहचा
नता हूं, क्योंकि रोज-रोज पैर पड़ता हूं तो पैर के गहने पहचानता हूं। बाकी गहनों
का मुझे कुछ पता नहीं। गांधीजी कहते हैं, यह कैसे हुआ होगा कि लक्ष्मण इतने
दिनों से साथ हैं। वह सीता के गहने नहीं पहचानता। तो विनोबा ने कहा--इसका
कारण है--लक्ष्मण ब्रह्मचर्य धारण किए हुए हैं। वह सीता का मुंह नहीं देखता। सी
ता के ऊपर नहीं देखता। वह सिर्फ पैर पर ही नजर रखता है। वह ब्रह्मचारी है।
गांधीजी को यह व्याख्या जंच गयी। तो उन्होंने कहा। विनोबा बड़ी ठीक व्याख्या क
रते हैं। मैं बहुत हैरान हुआ यह व्याख्या पढ़कर। अगर विनोबा की व्याख्या ठीक है
तो लक्ष्मण ब्रह्मचारी नहीं--व्यभिचारी सिद्ध होता है। क्योंकि जो लक्ष्मण सीता के
चेहरे की तरफ देखने से डरता हो, ब्रह्मचारी है? सीता के भी चेहरे को देखने से
जो डरता हो वह ब्रह्मचारी है? यह ब्रह्मचर्य का अर्थ हुआ? यह ब्रह्मचर्य का अर्थ
नहीं हुआ। यह तो अत्यंत कामुक चित्त का अर्थ हुआ। सीता के चेहरे पर भी दे
खने में जहां भय--भय का अर्थ क्या है? भीतर कहीं कोई वासना है। तो भय है।
तो भय क्या है सीता के चेहरे में? नहीं--लक्ष्मण इसलिए नहीं पहचान पाया दूसरे
गहनों को, कि उसने सीता का चेहरा नहीं देखा। पैर के गहने पहचान सकता है। ि
नश्चित रोज पैर पड़े होंगे, वह परिचित रहे होंगे। यह दूसरी बात है। लेकिन यह
कहना कि वह इसलिए नहीं पहचान पाया कि उसने ऊपर कभी देखा नहीं सीता
को, क्योंकि वह ब्रह्मचर्य की साधना कर रहा था। तो वह बड़े गलत ब्रह्मचर्य की
साधना करता था लक्ष्मण। अगर विनोबा ठीक कहते हैं, तो वह बड़ी ब्रह्मचर्य की
साधना कर रहा था। बिनोबा ठीक कहते हैं, तो वह बड़ी ब्रह्मचर्य की साधना बड़ी
मुश्किल में पड़ा होगा। जैसे ब्रह्मचारी पड़ते हैं। और जो सीता के चेहरे को देखने
से डरा होगा वह सपने में सिवाय सीता के चेहरे के और कुछ भी नहीं देखता हो
गा। नहीं--लेकिन, लक्ष्मण पर यह बात, व्याख्या थोपनी ही गलत है। यह व्याख्या
ही गलत है। लक्ष्मण पैर के गहने पहचान गए होंगे क्योंकि रोज पैर पड़ें होंगे। वे
गहने परिचित थे। इसका यह मतलब नहीं कि उसने और गहने न देखें होंगे, चेहरे
की तरफ न देखा होगा। लेकिन हमारा तथाकथित ब्रह्मचर्य इसी तरह एस्केपिस्ट
है। भागने वाला है। वह कहता है। भाग जाओ। देखो मत। वह डराने वाला है। फि
यर है वहां। और जहां भय है--जहां भागना है--जहां पलायन है--जहां आंख बंद क
रना है। ध्यान रहे--जिससे आंख बंद होगी वही आंख के भीतर खड़ा हो जाता है।
फिर उससे छुटकारा बहुत मुश्किल है। इसलिए मैं कहता हूं, चित्त के किसी भी वि
कारों से, चित्त की किसी भी विवृति से, चित्त के किसी भी विचार से, चित्त की ि
कसी भी प्रवृत्ति से कभी मत लड़ना। भूलकर मत पड़ना। लड़े कि हारे। हारना हो
तो लड़ना। जो लड़ेगा वह हारेगा। उसकी हार सुनिश्चित है। आपने चित्त से लड़
कर कोई कभी जीत नहीं सकता। हां, अगर जीतना हो तो लड़ना मत। देखना--जा
नना--साक्षी बनना। और जैसे ही साक्षी बनोगे, पाओगे कि मैं तो बाहर हूं। मैं तो
बियांड हूं। मैं तो जो दिखाई पड़ रहा है उससे अलग और दूर हूं। वह जो चारों त

रफ घिरा है धुआं। वह अलग है, मैं अलग हूं। सूरज के चारों तरफ अंधेरा घिर ज
ाए तो भी सूरज अंधेरा नहीं है। लेकिन अगर सूरज अंधेरे से लड़ने लगे और अंधेरे
पर ही ध्यान केंद्रित करने लगे, और कहने लगे, मरा, गया, यह अंधेरा मुझे घेर
रहा है। मरा हुआ जा रहा हूं मैं। तो सूरज मुश्किल में पड़ जाएगा। लेकिन अगर
सूरज जाने कि ठीक है। अंधेरा वह है। मैं तो सूरज हूं। मैं तो अलग हूं। घिरने द
ो अंधेरे को। कितना ही अंधेरा निकट आ जाए—फिर भी मैं सूरज हूं। कितना ही
अंधेरा पास आ जाए। फिर भी मैं अलग हूं। फिर भी प्रकाश और अंधेरे के बीच
फासला अनंत है।

यह प्रत्येक के भीतर जो साक्षी है। जो चेतना है—क्रांसेसनेस है, उसे सजग करने से
—जागने, साक्षी बनने से विचार विसर्जित होते हैं। वृत्तियां विसर्जित होती हैं। सन
विसर्जित होता है। और धीरे-धीरे वह जगह आती है, जहां चित्त का आकाश खाल
ी हो जाता है। और सिर्फ चेतना रह जाती है। वह साक्षी भाव के लिए सुबह मैंने
कहा है। यह मत पूछे कि कैसे लड़ें, यह मत पूछें कि कैसे विचारों को निकालें—य
ह मत पूछें कि कैसे विचारों को बंद करें? यह पूछें ही मत। यह पूछना ही गलत
है। यह पूछें कि कैसे जागे, कैसे देखें, कैसे पहचाने,कैसे साक्षी बनें? वह मैंने सुबह
कहा, कल सुबह हम और बात करेंगे।

एक दो छोटे प्रश्न और हैं। एक मित्र ने पूछा है कि आप पहले, तो बहुत सौम्य मृ
दु भाषा में बोलते थे। अब आप बहुत अग्रेसिव बहुत आक्रामक क्यों हो गए हैं?
वह मेरी गलती थी सौम्य और मृदु भाषा में बोलना। और सौम्य और मृदु भाषा में
मैंने बोलकर देखा, वह गलती थी। गलती इसलिए थी कि यह समाज सौम्य और
मृदु भाषा पसंद करता है, क्योंकि सौम्य और मृदु भाषा किसी को कोई चोट नहीं
पहुंचाती। कोई परिवर्तन नहीं लाती। सौम्य और मृदु भाषा सुखद है, मनोरंजक है
, लेकिन जीवन को कही बदलती नहीं। अब तो दुनिया में ऐसे लोग चाहिए जो भ
ीतर चाहे कितने ही सौम्य और मृदु हों—जो बाहर आक्रामक हो सकें, बाहर अग्रेसि
व हो सकें। तो इस जिंदगी की कुरूपता को बदला जा सकेगा। अन्यथा बदला जा
सकता है। दुनिया मग बहुत अच्छे आदमी हुए। और कठिनाई यही रही कि अच्छा
आदमी सौम्य और मृदु था। इसलिए यह दुनिया बुरी है। अच्छा आदमी सौम्य औ
र मृदु रहेगा तो दुनिया बुरी रहेगी। अच्छे आदमी को भी हिम्मत जुटानी पड़ेगी।
जीसस चर्च में गए। जीसस के मित्र उन्हें जानते थे। बहुत सौम्य और मृदु हैं। लेकि
न गांव में उन्होंने देखा, चर्च के बाहर ब्याजखोर बैठे हुए हैं और जन्मों से चल र
हा है ब्याज लोगों का और नहीं चुकता। जीवन बीत गए हैं बूढ़ों के और जितना
कर्ज उन्होंने लिया था उससे कई गुना वे चुका चुके हैं, और वह नहीं चुकता है।
और मंदिर के सामने ही ब्याजखोर बैठे हैं। वे सब ब्याजखोर पुरोहितों के एजेंट हैं।
जीसस ने कोड़ा उठा लिया। उठाकर कोड़ा उन्होंने दुकानें उलट दीं, कोड़े मारने
शुरू कर दिए। जीसस के मित्रों ने कहा होगा, क्या करते हैं आप? आप, जो कहते
है, कि एक गाल पर जो चांटा मारे, उसके सामने दूसरा गाल कर देना। इतने मृ

दु, इतने सौम्य आप! आप कोड़ा उठाकर ब्याजखोरों की दुकानें उलटते हैं? तो मैं कहता हूं, जीसस ने ठीक किया। ब्याजखोरों की दुकानें किसी को उलटानी ही पड़ेंगी। अगर ब्याजखोरी की दुकानें कोई नहीं उलटता तो ब्याजखोर तो यह चाहता है कि सौम्य और मृदु भाषा में आप बात करें, ताकि उसकी व्याज की दुकान चलती रहे। और सौम्य और मृदु, भाषा कहीं कोई चोट नहीं पहुंचाती, कहीं कोई नुकसान नहीं करती। दुनिया में अब आने वाले बुद्धों को, आनेवाले महावीरों को, आने वाले कन्फयूशियस की और आने वाले जीसस को आक्रामक होना पड़ेगा। दुनिया बहुत कुरूप रह चुकी है। सौम्य होने से अब नहीं चल सकता है। इसलिए वह आपने जो पूछा, ठीक पूछा।

लेकिन, क्या आप कभी समझते हैं कि आक्रामक होना हिंसा से ही निकलता हो, ऐसा अनिवार्य नहीं है। आक्रामक होना करुणा से भी निकल सकता है। कम्पसेनेट भी हो सकता है। लेकिन हम एक ही तरह के आक्रमण होने को जानते हैं—हिंसा के आक्रमण को। हम एक दूसरे आक्रमण को नहीं जानते—करुणा के आक्रमण को। अब तक हिंसा आक्रामक रही है। अहिंसा सौम्य रही है। करुणा सौम्य रही है। सौम्य करुणा के कारण ही दुनिया में अच्छी बातें तो बहुत हुई लेकिन दुनिया अच्छी नहीं हो सकती है। करुणा को भी आक्रामक होना पड़ेगा। करुणा को भी बदने के लिए क्रांतिकारी होना पड़ेगा। करुणा को भी चोट करनी पड़ेगी। कई बार ऐसा होता है कि हमें दिखाई भी नहीं पड़ता कि चोट हमारे हिम मैं हैं, हमारे मंगल में हैं। कठिनाई तो यह है कि जिनके हित मग चोट हो वे ही आकर कहेंगे—आप—और ऐसी चोट की बात कर रहे हैं? क्योंकि हजारों साल से उन्हें समझाया गया है कि चोट की बात ही नहीं करनी है।

मैंने सुना है कि एक फकीर था। उस फकीर के पास एक आदमी आया। उस आदमी आकर उस फकीर से कहा कि मैं अध्यात्म, योग, ज्ञान-साधना चाहता हूं। मैं आध्यात्मिक होना चाहता हूं। मुझे अपनी शरण में लें। मुझे वह शास्त्र बताएं जिसे पढ़कर मैं आध्यात्मिक हो जाऊं। उस फकीर ने कहा, बंद कर बकवास। अध्यात्म वगैरह की बात मत कर। और यहां से बहार निकल जा। दुबारा इस आश्रम में लौटकर मत आना। बाहर होओ। वह आदमी तो घबड़ा गया। आस-पास दस-पच्चीस लोगों ने कहा कि महाराज हम तो सदा आपको सौम्य समझते थे। और आने यह कैसा दुर्व्यवहार किया। हम समझे नहीं। आप इतने जोर से क्यों बोले? उस फकीर ने कहा, थोड़ी देर ठहरो। इसके पहले कि मैं तुम्हें भी निकाल कर बाहर करूं, मैं तुम्हें एक दृष्टांत देता हूं। वह फकीर थोड़ी देर चुप बैठा रहा। एक पक्षी खिड़की से घुसा भीतर। सारे कमरे में चक्कर लगाने लगा। अब आप जानते ही है पक्षियों को, आदमियों जैसी ही बुद्धि उनकी भी होती है। अगर पक्षी कमरे के भीतर घूस जाए तो खुली खिड़की को छोड़कर सब जगह चोट मारेगा, निकलने की कोशिश करेगा। खुली खिड़की छोड़ देगा। आदमियों जैसी बुद्धि उसकी भी होती है। खुली खिड़की छोड़ देगा और सब दीवरों पर चोट मारेगा। जहां से न निकल सकेगा व

हां और जोर से चोट मारेगा। और जब नहीं निकल सकेगा—घबड़ा जाएगा। घबड़ाहट में पागल की तरह चोट मारेगा। फिर खुली खिड़की देखना मुश्किल हो जाएगी। वह पक्षी जोर से चक्कर काट रहा है। दीवार से टकरा रहा है। फिर वह जाकर घबड़ाकर खुली खिड़की के ऊपर बैठ गया। फकीर ने एक क्षण उसे बैठे देखा और जोर से ताली बजायी। वह ताली का बजना—वह पक्षी फड़फड़ाया—घबड़ा गया और खिड़की के बाहर हो गया। उस फकीर ने उन बैठे हुए मित्रों को कहा, मेरी ताली सुनकर पक्षी ने सोचा होगा—बड़ा दुष्ट है—कैसा दुर्व्यवहार कर रहा है। लेकिन उसी फड़फड़ाहट मग वह खुले आकाश में चला गया है। अब शायद उसे पता चले कि ताली किसलिए बजायी गयी थी। हो सकता है अब भी उसे पता चले। तो जिसको मैंने जोर से बाहर निकाल दिया है, अगर उसमें थोड़ी भी समझ होगी तो वह खुले आकाश में पहुंच जाएगा। भरा आक्रोश, उस फकीर ने कहा, उसकी स्वतंत्रता के लिए ही है।

मैं भी आपसे कहता हूं, बहुत सी बातें हैं, जो मैं बहुत आक्रोश से कहना चाहता हूं। कहता हूं। वह सिर्फ इसलिए है कि इस देश के प्राण जो न मालूम कितने दिनों से बंद ही हैं। यह भूल ही गए कि बंद ही हैं, वह मुक्त हो सकें। इस देश की आत्मा जो कितने दिनों से गुलाम है, यह भूल ही गयी कि वह गुलाम है। गुलामी को ही स्वतंत्रता समझ रही है और जंजीरों को आभूषण समझ रही है। उसे चोट लग सके। उसे दिखायी पड़ सके। निश्चित ही सोए आदमी को जगाना, सोए आदमी को बहुत अग्रेसिव मालूम पड़ता है। सोए हुए आदमी को जगाएं, बहुत गुस्सा आता है। सपने देखते थे, सब तोड़ दिया। नींद खराब कर दी। लेकिन सोए हुए को जगाना हो तो हिलाना ही पड़ता है। मेरा आक्रोश हिलाने के अतिरिक्त और किसी प्रयोजन से नहीं है। नीचे से जड़ें टूट जाएं। अतीत का पाखंड छूट जाए। गुलामी टूट जाए। जंजीरें टूट जाएं। इस देश की आत्मा मुक्त हो सके। खुले आकाश में उ. ड सके। इसके लिए अब शांति की बातें तौर राम धुन करने से नहीं चल सकता है। बहुत हो चुकी राम धुन। बहुत हो चुके भजन कीर्तन। बहुत हो चुकी शांति की वार्ता। किसी न किसी को शांति को क्रांति बनाना ही पड़ेगा। किसी न किसी को शांति को अंगार देना पड़ेगा। और क्रांति की ज्योति देनी पड़ेगी। किसी न किसी को अब शांति को भी धार देनी पड़ेगी। उसमें भी धार आ जाए। और शांति भी शांत रहकर मुर्दा न हो जाए, जीवंत बने और जीवन को बदले।

इसलिए मैं कहता हूं, वह निश्चित मित्र पूछते हैं। वह मेरी गलती थी जो मैं सौम्य था। अब ऐसी गलती नहीं होगी।

और कुछ प्रश्न रह गए हैं, वह कल संध्या हम बात करेंगे। सुबह चौथे सूत्र पर बात करूंगा। कल सांझ आपके उत्तर दूंगा। मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना उसके लिए अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं।

मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

अहमदाबाद
दिनांक १० जून १९६९, शाम
६ जीवन है द्वार

मित्रों ने बहुत से प्रश्न पूछे हैं—एक मित्र ने पूछा है कि हमारे देश की क्या यह सबसे बड़ी बीमारी नहीं रही कि हमने बहुत ऊंचे विचार किए, लेकिन व्यवहार बहुत नीचा किया। सिद्धांत ऊंचे और कर्म बहुत नीचा। इसीलिए बहुत बड़े-बड़े व्यक्ति तो पैदा हो सके, लेकिन, भारत में एक बड़ा समाज नहीं बन सका?

इस संबंध में दो तीन बातें समझनी उपयोग की होंगी। पहली बात तो यह—यदि विचार श्रेष्ठ हो तो कर्म अनिवार्यरूपेण श्रेष्ठ हो जाता है। इस भ्रम में रहने की कोई जरूरत नहीं है कि विचार हमारे श्रेष्ठ थे और फिर कर्म हमारा निकृष्ट रहा। श्रेष्ठ विचार अनिवार्यरूपेण श्रेष्ठ कर्म के जन्मदाता बनते हैं। अगर श्रेष्ठ कर्म न जन्मा हो तो जानना कि विचार ही भ्रांत रहे होंगे, श्रेष्ठ न रहे होंगे। यह असंभव है कि विचार सत्य के हो और आचरण असत्य की ओर चला जाए। यह असंभव है कि ज्ञान तो स्पष्ट हो और जीवन भटक जाए। यह तो ऐसे ही हुआ कि हम कहें कि आंख तो बिलकुल ठीक थी लेकिन फिर भी हम दीवार से टकरा गए। दरवाजे से न निकल सके। अगर दीवार से टकरा गए हैं, तो आंख ठीक न रही होगी। आंख वीक रही होती तो दरवाजे से निकल गए होते। दीवार से टकराने की कोई जरूरत न थी।

ज्ञान के ठीक होने का सबूत क्या है? ज्ञान के ठीक होने का सबूत यही है कि उसके अनुकूल जीवन बदल जाए। अगर जीवन न बदलता हो तो जान बुनियादी रूप से गलत रहा होगा। कहीं न कही भ्रांत रहा होगा। यह तो पहली बात, कि इस मूल्य में तो यह भ्रम है कि हमारा ज्ञान तो बड़ा श्रेष्ठ है, लेकिन आचरण हमारा बड़ा नीचा है। तो हम शायद ऐसा सोचते हैं कि ज्ञान को आचरण में नहीं ला पाए इसलिए ऐसी भूल हो गयी। ज्ञान आचरण में आ ही जाता है, जैसे मनुष्य के पीछे छाया चलती है। ज्ञान को आचरण में लाने से बचना असंभव है। ज्ञान ही भ्रांत रहा हो तो बात हो सकती है। मेरी दृष्टि में, हमें ज्ञान के ही आमूल आधार बदलने होंगे। ज्ञान में ही कुछ बुनियादी भूलें थीं। जैसे मैं कुछ भूलें गिनाऊं, जिनकी वजह से वह हमारे समाज का आचरण नहीं बन सका। जैसे—इस देश का पूरा ज्ञान जीवन-विरोधी है—लाइफ निगेटिव है। जिस देश का ज्ञान जीवन-विरोधी हो उस देश का ज्ञान कभी जीवन रूपांतरित करने वाला सिद्ध नहीं हो सकता है। जिस देश का ज्ञान मोक्ष पाने के आस-पास मंडराता हो, जिस देश का ज्ञान मृत्यु के बाद के लिए विचार करता हो, जिस देश का ज्ञान जीवन से मुक्त होने की, जीवन से आवागमन का छुटकारा पाने की चेष्टा करता हो, उस देश का ज्ञान कभी भी जीवन का आधार नहीं बन सकता। ज्ञान लाइफ अफरमेटिव हो। जीवन को विधायकता देता हो। जीवन को स्वीकृति देता हो। जीवन के आनंद को उपलब्ध करने करने की दिशा देता हो—तो ज्ञान आचरण में और जीवन में उतर सकता है। इस मुल्क का

जो ज्ञान है, वह स्वीसाइडल है—वह आत्मघाती है। आत्मघाती ज्ञान को अगर जीवन में उतारना हो तो कुछ थोड़े से लोग ही उतार सकते हैं जिनके भीतर स्वीसाइड की मौलिक इन्सर्टिक्ट हो, बाकी लोग नहीं उतार सकते। जिन लोगों के लिए जीवन से ज्यादा महत्वपूर्ण जीवन के बाद का लोक हो, और जिनके लिए जिंदा रहने से ज्यादा महत्वपूर्ण मर जाने की कला हो। और जिसके लिए जीने से भाग जाना कीमती लगता हो। ऐसे थोड़े से रुग्ण—चित्त लोग—बीमार-चित्त लोग ही इस ज्ञान को जीवन में उतार सकते हैं। शेष का पूरा समाज अप्रभावित रह जाएगा। इस देश की पूरी की पूरी चिंतना पारलौकिक है। अदरवर्ल्डली है। इसलिए बेमानी हो गयी है। ज्ञान तो इस जीवन को बदलने, इस जीवन को सुंदर बनाने, इस जीवन को श्रेष्ठता देने, इस जीवन को एक कलात्मक रूप देने के लिए हो, तो जीवन को बदल सकता है। पहली बात यह।

दूसरी बात यह कि हम, जीवन में जो भी रसपूर्ण है, जीवन में जो भी भोगने योग्य है, जीवन में जो भी सुंदर है, सब की गहरी निंदा से भरे हुए हैं। ठीक से कहा जाए तो हम एक ऐसे ज्ञान को जन्म दिए हैं जो मेसोचिस्ट भी है और सैडिस्ट भी है। जो दूसरों को दुख देने में भी रस लेता है और खुद को दुख देने में भी रस लेता है। सुख कोई हमारी धारणा नहीं है। अगर कोई आदमी अपने को दुख दे तो वह महात्मा हो जाता है। और जो आदमी अपने को जितना दुख देने में कारीगिरी दिखलाए उतना श्रेष्ठ और पूज्य हो जाता है। तो अगर पूरा समाज मेसोचिस्ट हो जाए—सारे का सारा समाज स्व-दुःख वादी हो जाए, तो ही हमारा ज्ञान आचरण में आ सकता है, अन्यथा नहीं आ सकता। हमारा ज्ञान, जिसके मन में थोड़ी भी सुख की कामना हो, उसके आचरण मग आने वाला नहीं है। हजम सुख को स्वीकार ही नहीं करते। हमने किसी सुख की वृत्ति को सम्मान से नहीं देखा है। अगर एक आदमी ठीक से खाना खाए तो सम्मानित नहीं हो समता। भूखों मरे—उपवास करे—तो सम्मानित हो सकता है। ठीक से कपड़े पहने तो सम्मानित नहीं हो सकता। नंगा खड़ा हो जाए तो सम्मानित हो सकता है। कोई आदमी जितना अपने को दुख दे, जितना सताए, उतना त्यागी, और त्याग की बड़ी महिमा है। अव यह दुर्भाग्य की बात है कि अगर कोई भी समाज इस तरह के दृष्टिकोण पकड़ेगा। तो कितने लोग अपने की दुख देने के लिए तैयार हो सकते हैं। और अच्छा है कि तैयार नहीं होते। नहीं तो पूरा समाज पागलखाना हो जाए। थोड़े से लोग ही हो सकते हैं। और वह भी इसीलिए हो पाते हैं कि मौलिक रूप से वे रुग्ण हैं, और विक्षिप्त हैं। उनके मस्तिष्क में कहीं न कहीं कोई रोग है। वह एबनार्मल है। नार्कल नहीं हैं। तो जिस देश की ज्ञानधारा एबनाम आदमी को उपयोगी सिद्ध होती हो और नार्मल आदी को अनुपयोगी सिद्ध होती हो, वह आचरण में नहीं आ सकती। फिर यही हो सकता है कि दस-पांच बड़े-बड़े नाम लेने को पैदा हो जाए। शेष सारा का सारा समाज बिलकुल उल्टा मालूम पड़ेगा। इसका जो गहरे से गहरा दृष्परिणाम होगा, वह यह होगा कि हम जो विकास करते हैं धारणाओं का, वह थोड़े से अतिवादी

लोगों के काम पड़ता है, और सामान्य आदमी के जीवन को विकास करने की क
ोई धारणा ही हम विकसित नहीं करते। तो उसका परिणाम समझ लें।
अगर कोई समाज ऐसे नियम बना दे कि जो आदमी शीर्षासन करता है, वही अच
छा आदमी है और जितनी देर शीर्षासन करता है उतना ही अच्छा आदमी है, तो
दस-पांच लोग मिल जाएंगे अहमदाबाद में जो दिन भर शीर्षासन करते रहे। बाकी
लोग नहीं कर पाएंगे। जो नहीं कर पाएंगे, वह निंदित हो जाएंगे। नहीं कर पाएंगे
तो उनकी पूजा करेंगे, जो कर रहे हैं। उनको हाथ जोड़कर नमस्कार करेंगे, कि
ये बहुत महापुरुष हैं। लेकिन शीर्षासिन करने वाले लोग भी किसी काम के सिद्ध हो
ने वाले नहीं हैं। और शीर्षासिन को आपने कोई केंद्रीय आदती बना लिया तो बाकी
सब लोगों के जीवन आदर्शहीन हो जाएंगे। क्योंकि एक ही आदर्श है कि शीर्षासन
जो कर ले तो कम हो गया। जो नहीं कर पाए वह आत्मग्लानि अनुभव करेगा।
तो भारत में हर आदमी आत्मग्लानि से भरा हुआ है। और जो करने योग्य बताया
जाता वह कर नहीं पाता है। इसलिए भारत का आचरण ऊपर नहीं उठ पाया।
अगर हम आचरण को ऊपर उठाना चाहते हों तो हमें ज्ञान की पूरी फाउंडेशन बद
ल देनी पड़ेगी। एक तो परलोक से ज्ञान को मुक्त करना पड़ेगा। इस लोक से जोड़
ना पड़ेगा। दुख से ज्ञान को मुक्त करना पड़ेगा। और सुख से जोड़ना पड़ेगा। परमात
मा से ज्ञान को मुक्त करना पड़ेगा। पदार्थ से जोड़ना पड़ेगा। जीवन की एक आनंद
पूर्ण--रसपूर्ण दृष्टि विकसित करनी पड़ेगी। और सामान्य और सरल और नैसर्गिक
जो संभव है। एक सामान्य सरल--नैसर्गिक व्यक्ति के लिए--उसको ध्यान में रखकर
पुनर्विचार करना पड़ेगा। तो इस देश का आचरण बदलेगा। नहीं तो इस देश का
आचरण रोज ही नीचे गिरता चला जाएगा। तो मैं यह नहीं कहता हूं कि ज्ञान आ
पके पास ठीक-ठीक है। सिर्फ आचरण नहीं है। ज्ञान ही बुनियादी रूप से गलत है।
इसलिए आचरण नहीं है। और अगर सिर्फ आचरण ठीक करने की आपने कोशिश
की, तो वह तो कोशिश हम पांच हजार साल से कर रहे हैं। और ज्ञान को हम म
ाने बैठे हैं कि वह ठीक है ही। सिर्फ आचरण को ठीक करना है। वह पांच हजार
साल से असफल हुए हैं। आगे आप पचास हजार साल भी कोशिश करते रहें, आप
असफल होते चले ज्यादा बुद्धिमान होता चला जाएगा।
यह जो ज्ञान था, जितना निबुद्धि समाज हो उसमें थोड़ा बहुत असर भी हो सकता
था, लेकिन बुद्धिमान समाज में इसकी असफलता और भी निश्चित है। पूरे ज्ञान
की पुनःर्विचारणा की जरूरत है।
इसी संबंध में एक प्रश्न और पूछा है। कि क्या आत्म-साक्षात्कार, सेल्फ-रिलाइजेश
न सेवा के द्वारा नहीं होना चाहिए? क्या वही उचित नहीं है कि सेवा के द्वारा आ
त्म-साक्षात्कार हो?
इसे भी थोड़ा समझ लेना जरूरी है। पहली बात तो यह है कि आत्म-साक्षात्कार न
हुआ तो कोई आदमी कभी सेवा कर ही नहीं सकता। आत्म-साक्षात्कार के पहले
तो सेवा असंभव है। आत्म-साक्षात्कार के पहले तो स्वार्थ ही संभव है। सेवा असं

भव है। असल में—आत्म-साक्षात्कार से ही यह पता चलता है कि मैं और दूसरा त
ो नहीं है। आत्म-साक्षात्कार से ही यह पता चलता है कि जो दूसरा है वह भी मैं
ही हूं। तो उसकी सेवा भी मेरा स्वार्थ बन जाती है। जब तक आत्म-साक्षात्कार न
हीं है, मैं अलग हूं, आप अलग हैं। और अगर मैं सेवा भी करूंगा। तो सेवा भी ऊ
पर का धोखा और पाखंड होगी। भीतर कोई स्वार्थ ही होगा। हम चारों तरफ सेव
कों को भली-भांति जानते हैं और देखते हैं। सेवक बुनियादी रूप से अगर आत्म-स
ाक्षात्कार की दिशा में गया हुआ नहीं है, तो सेवा भी उसकी अहंकार की तृप्ति क
ा—यश की तृप्ति का—महत्वाकांक्षा, एम्बीशन की तृप्ति का माध्यम बनेगी। और से
वक भी मौके की तलाश में रहेगा। कब मालिक हो जाए। हिंदुस्तान में हम देख र
हे हैं, कि बीस साल में सेवक किस बुरी तरह मौलिक हो गए हैं। जिन-जिनने सेवा
की है, वह इस बुरी तरह बदला ले रहे हैं कि आगे लोग सेवा करें तो बड़ा अच
छा है। सेवक सेवा करके फिर ऐसा बदला लेता है जिसका कोई हिसाब नहीं। और
सिर्फ इस तलाश में रहते हैं कि कब मौका मिले कि वह आकर गर्दन पकड़ ले।
सेवा हो ही नहीं सकती आत्म-साक्षात्कार के पूर्व। इसलिए कोई भूलकर न सोचे ि
क सेवा के द्वारा साक्षात्कार हो सकता है। आत्म-साक्षात्कार से सेवा निष्पन्न हो स
कती है। आत्म-साक्षात्कार से सेवा जीवन बन सकती है। लेकिन सेवा से कोई आत
म-साक्षात्कार नहीं हो सकता। हम जानते हैं कि दुनिया में बहुत से लोग ऐसा मा
नते है कि वह सेवा कर रहे हैं। ईसाई मिशनरी हैं—सारी दुनिया में सेवा कर रहे
हैं। उनकी नकल पर बने रामकृष्ण मिशन जैसे लोग हैं। वे सेवा कर रहे हैं। और
सारी दुनिया में धीरे-धीरे बहुत सेवा करने वाले लोग हैं। सर्वोदय वाले हैं। और स
ब तरह के लोग हैं। अगर इनकी सेवा के पीछे इनकी मोटिविटी, इनके मोटिव, इ
न सबकी खोजबीन की जाए तो हैरानी होगी।

मैं एक छोटी सी कहानी कहूं आपसे। चीन में एक बहुत बड़ी जगह है। वहां एक
मेला लगा हुआ है और कुआं है, जिसमें पाट नहीं हैं। एक आदमी उस कुएं में गि
र गया है और चिल्ला रहा है कि मुझे बचाओ। तो वहां से एक बौद्ध भिक्षु निकल
ता है। यह नीचे झांककर देखता है। वह आदमी चिल्लाता है कि भिक्षु जी मुझे बा
हर निकालिए। मैं मर रहा हूं। मैं तैरना भी नहीं जानता और ज्यादा देर बच भी
नहीं सकता। इट को कितनी देर पकड़े रहूंगा। वह भिक्षु कहता है, निकलकर भी
क्या करोगे, बाहर भी दुख है। सब जगह दुख है। जो कुएं के बाहर हैं, वे भी एक
बड़े कुएं में पड़े हैं।और भगवान ने कहा है—बुद्ध ने कहा, दुख तो जीवन है। तो
जीवन से मुक्त हुए बिना दुख से कोई बाहर हो नहीं सकता। तो कुएं से भी निक
लकर क्या करोगे? जीवन से निकलने की कोशिश करो। वह चिल्लाता है। मैं आप
के उपदेश सुनूंगा। पहले मुझे बाहर निकाल लें। लेकिन वह भिक्षु कहता है कि यह
भी भगवान ने कहा है कि दूसरे के कर्मों के बीच में बाधा नहीं आनी चाहिए। मैं
तुम्हीं बचा लूं और तुम चोरी करो, और हत्या कर दो तो जिम्मेवार मैं भी हो
जाऊंगा। मैं अपने रास्ते जाता हूं। तुम अपने रास्ते जाते हो। हमारा कहीं रास्ता क

टता ही नहीं। मेरे अपने कर्मों की धारा है। तुम्हारी अपने कर्मों की धारा है। वह ि भक्षु आगे चला जाता है।

उसके पीछे कन्फयूशियस को मानने वाला एक दूसरा भिक्षु आता है। वह नीचे झां ककर देखता है। वह फिर चिल्लाता है। वह मरता हुआ आदमी कहता है, मुझे ब चाओ। वह कन्फयूशियसवादी कहता है कि मैं तुम्हें बचाऊंगा जरूर तुम घबड़ाओ मत, कन्फयूशियस ने लिखा है अपनी किताब में, कि हर कुएं के ऊपर पाट जरूर होना चाहिए। जिस कुएं पर पाट न हो। जिस राज्य में बिना पाट के कुएं हों, वह राजा अधर्मी है। तुम घबड़ाओ मत। हम आंदोलन चलाएंगे। हर कुएं पर पाट बनव ा देंगे। तुम बेफिकर रहो। हम आदमी कहता है। मैं बेफिकर कैसे रहूं। पाट जब ब नेंगे-बनेंगे। मैं तो मर ही जाऊंगा। और वह आदमी कहता है—सवाल तुम्हारा नहीं —सवाल समाज का है। सवाल सबका है। मैं सब की सेवा में संलग्न हूं। एक-एक आदमी की सेवा कहां से करूंगा। और एक-एक आदमी की सेवा करूंगा तो समाज का क्या होगा? तुम बेफिकर रहो। मैं जाता हूं—मेले में अभी आंदोलन चलाता हूं। वह आदमी मेले में चला जाता है। मंच पर खड़े होकर लोगों को समझाने लगता है, हर कुएं पर पाट होना चाहिए। जो कुएं पर पाट बनवाता है—बड़ी सेवा करता है। जिस राज्य में कुएं पर पाट नहीं है वह राज्य बड़ा अधर्मी है।

उसके पीछे, एक ईसाई मिशनरी उस कुएं के घाट पर आता है। वह नीचे झांककर देखता है। वह आदमी चिल्लाता है। ईसाई मिशनरी झोले में से रस्सी निकालता है। रस्सी बांधकर कुएं में डालता है। उतरता है। उस आदमी को निकालकर बाहर लाना है। वह आदमी उसके पैर पर गिर जाता है और कहता है—तुम्हें एक सच्चे धार्मिक आदमी मालूम पड़ते हो। तुमने बड़ी कृपा की, जो बचाया। लेकिन मैं तुम से यह पूछना चाहता हूं कि झोले में तुम रस्सी रखे कैसे थे? वह आदमी कहने ल गा—हम घर से तैयारी करके निकलते हैं। सेवा ही हमारा धंधा है। हम पहले से ह ी तैयार होकर निकलते हैं कि कोई कुएं में गिरे। कहीं आग लगे। कहीं कुछ हो। तो हम तैयारी रखते हैं। हम सब तैयारी रखते हैं। हम तो सेवा की धर्म मानते हैं । क्योंकि भगवान ने कहा है—जीसस ने कहा है, कि जो सेवा करेगा, वही मोक्ष पा सकेगा। तुम कुएं में गिरे, तुमने बड़ी कृपा की। हमारे मोक्ष का मार्ग साफ हुआ। अपने बच्चों को भी समझा जाना कि कुओं में गिरें, ताकि हमारे बच्चे उन्हें कुओं से निकालते रहें। क्योंकि मोक्ष बिना सेवा के नहीं मिलता है।

मोक्ष पाना जरूरी है, तो सेवा करनी जरूरी है। या तो सेवा करने वाला मोक्ष पाने की कोशिश कर रहा है, तब भी स्वार्थ है। या सेवा करने वाला चारों तरफ अख बारों में खबर छपवाने की कोशिश कर रहा है। तब भी यश है। या सेवा करने वा ला कुछ भीतरी बीमारियों—परेशानियों—चिंताओं से इतना घबड़ाया हुआ और परेश ान है कि कुछ भी हनीं करना चाहता है। और कहीं भी अपने को आकुपाइड और व्यस्त कर देना चाहता है। तो वह उस काम में लगा हुआ है या वह किन्हीं पदों की यात्रा करना चाहता है और सेवा के द्वारा उन पदों पर पहुंच जाना चाहता है।

लेकिन, सेवा तभी सेवा बन सकती है जब किसी व्यक्ति को यह अनुभव हुआ हो कि मैं और तू के बीच जो फासला है वह झूठ है। मैं ही हूं। लेकिन यह आत्म-स ाक्षात्कार नहीं हो सकता। दूसरे का आनंद भी मेरा आनंद है। जिस दिन दूसरे के आनंद और मेरे आनंद में कोई बाधा नहीं, कोई दीवार नहीं, कोई भेद नहीं, दूसरे के आनंदित होने में ही मैं आनंदित हो जाता हूं, जिस दिन ऐसी संभावना बने, उस दिन तो सेवा हो सकती है। उसके पहले सेवा का नाम हो सकती है पीछे स्वा र्थ ही होगा। और तब सेवा खतरनाक भी हो सकती है। अगर दुनिया में सेवकों के द्वारा मिस्चीफ का हम हिसाब लगाए—तो बहुत घबराहट होती है। जितने लोग दुि नया का सुधार करने और दुनिया की सेवा करने को उत्सुक हुए हैं, अगर उन स बने, जो परिणाम लाया है दुनिया में—उसको हम देखें, तो ऐसा लगेगा कि आदमी को उसके भाग्य पर छोड़ दो और सेवको, तुम जरा दूर हट जाओ—तो शायद दुि नया ठीक हो जाए। सब सेवा कर रहे हैं—इस्लाम सेवा कर रहा है। हिंदू सेवा कर रहे हैं । ईसाई सेवा कर रहे हैं, सारी दुनिया सेवा कर रही है। और सेवा का पि रणाम क्या हो रहा है? ये सब सेवा करने वाले आदमी को कहां ले जा रहे हैं। ि कस गड्ढे में डाल रहे हैं? इस सेवा के पीछे प्रयोजन दूसरे ही है। इस सेवा के पीछे कारण दूसरे हैं। हेतु दूसरे हैं। और होंगे ही। क्योंकि जब तक कोई आत्म-साक्षात कार को उपलब्ध न हुआ हो, तब तक हेतु से—मोटिव—से—स्वार्थ से मुक्त नहीं हो ता है। और अगर यह खयाल पकड़ जाए कि सेवा करनी ही है, तब और कठिनाई हो जाती है। मैंने एक घटना सुनी है—

एक स्कूल में एक ईसाई पादरी बच्चों को समझाता है कि सेवा जरूर करनी चाहि ए। कम से कम एक दिन में एक सेवा का कार्य करना चाहिए। जब मैं दुबारा आ ऊं तो तुमसे, पूछूंगा। तुमने कोई सेवा का मार्ग किया? सात दिन बाद वह आता है और बच्चों से पूछता है। एक बच्चा हाथ हिलाता है कि मैंने सेवा की। दूसरा ब च्चा, तीसरा बच्चा, तीन बच्चे तीस बच्चों में से हाथ हिलाते हैं कि हमने सेवा क ी। यह पादरी कहता है, बहुत बड़ा काम किया। फिर भी तीस ने सेवा की। तब भ ी ठीक है। वह पहले से पूछता है, तुमने क्या सेवा की है? वह बच्चा कहता है, मैं ने एक बूढ़ी स्त्री को सड़क के बाहर करवाया। कहता है बहुत अच्छा किया। बूढ़ी स्त्रियों को सड़क के पार करवाना चाहिए। दूसरे से पूछा, तुमने क्या किया? उसने कहा, मैंने भी एक बूढ़ी स्त्री को सड़क के पार करवाया। तब उसे थोड़ा शक हो ता है, कि बुढ़िया मिल गई। फिर वह सोचता है, इतनी बुढ़िया हैं। को दिक्कत न हीं। दो भी मिल सकती है। वह तीसरे से पूछता है, तूने क्या किया है? वह कहत ा है, मैंने भी एक बूढ़ी औरत को सड़क के पार करवाया। तब वह थोड़ा हैरान हो ता है। वह कहता है—तुम्हें तीन बुढ़िया मिल गयी? उन्होंने कहा, नहीं तीन बुढ़िया नहीं थी, एक ही बूढ़ी थी। हम तीनों ने मिलकर पार करवाया। वह कहता है, क या बूढ़ी इतनी अशक्त हालत में थी कि अकेला कोई पार हनीं करवा सकता था? वह बोले, अशक्त नहीं थी, काफी मजबूत थी। और बिलकुल पार होना ही नहीं

चाहती थी बामुश्किल हम पर करवा पाए हैं। और आपने कहा था, सेवा का कोई कार्य करना चाहिए। आपने कहा था, किसी बूढ़े को रास्ता पार करवा दो। किसी डूबते को बचाओ। किसी आग लगने वाले को निकालो। तो हमें सबसे सरल यही मालूम पड़ा कि किसी बूढ़े को हम रास्ता पार करा दे।

अगर एक बार दिमाग में यह खयाल पकड़ाया जाए कि सेवा करो। तो सेवा करना दिमाग के लिए मोक्ष या स्वर्ग या अच्छे आदमी होने का आधार बन जाए तो सेवा मिस्चीफ हो जाने वाली है। और मिस्चीफ हो गयी है। नहीं, मैं नहीं मानता हूं, कि सेवा कोई आत्म-साक्षात्कार है। सेल्फ-रियलाइजेशन का रास्ता है। सेल्फ-रिशलाइजेशन का रास्ता तो बढ़िया दूसरा है। वह तो ध्यान है। या समाधि है। हां, ध्यान और समाधि के मार्ग से चला हुआ व्यक्ति जब स्वयं के साक्षात की थोड़ी सी झलक पाता है तो उसे झलके की परिणति सेवा में होनी शुरू हो जाती है। वह सेवा बात ही और है। वह आदमी को पता भी नहीं चलता है कि मैंने किसी की सेवा की है। उसे यह भी पता नहीं चलता कि सेवा करके मैंने कोई उपकार किया। उसे यह भी पता नहीं चलना कि सेवा की है तो कुछ विशेष किया है। यह सेवा उसके लिए सहज स्वभाव बन जाती है। और जिस दिन सेवा स्वभाव बने उसी दिन अर्थपूर्ण है, उसके पहले अर्थपूर्ण नहीं है।

एक मित्र ने पूछा है कि आप मानवता की बात करते हैं तो क्या आप को इस्लाम में पूर्ण हुआ नहीं पाते हैं?

किसी वाद मग या किसी सिद्धांत में मानवता कभी पूर्ण नहीं हो सकती है। जहां वाद, जहां इज्म है, जहां शास्त्र है, जहां सिद्धांत है, जहां आइडियालाजी है—जहां आदमी को आदमी से तोड़ने का उपाय है। कोई आइडियालाजी आदमी-आदमी को जोड़ नहीं सकती। मुझे और आपको जो तोड़ता है, वह विचार है। मेरा एक विचार है, आपका दूसरा विचार है। टूट शुरू हो गयी। इस्लाम बात करता है, मनुष्यता की लेकिन इस्लाम ने मनुष्यता की जितनी हत्या की है उतनी किसी और ने की है? इस्लाम शब्द का मतलब होता है शांति। जितनी अशांति इस्लाम ने फैलाई है उतनी किसी दूसरे ने फैलायी है? सारी दुनिया के धर्म यह बात करते हैं कि हम सबको जोड़ना चाहते हैं। लेकिन कोई धर्म सबको नहीं जोड़ पाया। बल्कि हर धर्म छोटे से टुकड़े को तोड़कर और अलग खड़ा हो गया है। हर नया धर्म तोड़ने का एक नया उपाय बनता है। जोड़ने का तो नहीं बनता। तो फिर कुछ सोचना पड़ेगा। कि तोड़ने और जोड़ने की प्रक्रिया क्या है?

जब भी मैं किसी विचार को संगठित करूंगा तब किसी के खिलाफ संगठन होना शुरू हो जाएगा। जब भी विचार संगठित होगा, हमेशा घृणा पर खड़ा होता है और विरोध में खड़ा होता है। इस्लाम संगठित होगा तो किसके खिलाफ? और हिंदू संगठित होंगे तो किसके खिलाफ? और मुसलमान संगठित होंगे तो किसके खिलाफ? और कम्युनिस्ट संगठित होंगे तो किसके खिलाफ? संगठन सदा किसी के खिलाफ इकट्ठा होता है। संगठन प्रेम से नहीं बनते। अब तक प्रेमियों के कोई संगठन नहीं ब

नाए हैं। सब घृणा करने वाले लोगों के संगठन है। चाहे उनके नाम कुछ हों, नारे कुछ हों, तरकीब कुछ हो। लेकिन संगठन दूसरे की दुश्मनी में बनता है। और सब आइडियालाजी संगठित होना चाहती हैं। चाहे वह इस्लाम हो—चाहे कोई और हो। चाहे ईसाइयत हो, चाहे जैन हो, चाहे बौद्ध हो। मात्रा के भेद हो सकते हैं। लेकिन सिद्धांत जब संगठित होता है तो वह एक गढ़ बनता है। और उस गढ़ के अपने स्वार्थ बनने शुरू हो जाते हैं। उसका वेस्टेड इन्ट्रेस्ट शुरू हो जाता है। और उस ग.ढ के बाहर जो हैं वह दुश्मन हो जाते हैं। और उन दुश्मनों को लड़ना, उनको कन्वर्ट करना, उनको बदलना, उनको अपने घेरे में लाना, सारा काम शुरू हो जाता है। फिर मनुष्यता के हित में मनुष्यता की हत्या शुरू हो जाती है। मेरी दृष्टि में—मनुष्यता उस दिन एक होगी जिस दिन एक करने वाला कोई इज्म जमीन पर नहीं होगा। और एक-एक आदमी अकेला-अकेला होगा। उस दिन मनुष्यता एक हो जाएगी। जब तक संगठन है तब तक मनुष्यता एक नहीं हो सकती है। जब तक राष्ट्र है तब तक मनुष्यता एक नहीं हो सकती है। जब तक इज्म है—चाहे इस्लाम—चाहे कोई और—तब तक मनुष्यता एक नहीं हो सकती। मनुष्यता एक होगी, एक-एक व्यक्ति की अपनी मौलिक इकाई रह जाए। और कुछ लोग संगठित होने की कोशिश बंद कर दें। तो मनुष्यता एक हो जाएगी। अब यह बड़े मजे की बात है कि जो एक करते हैं वही तोड़ने वाले हैं। जो भी नारा देता हैं कि इकट्ठे हो जाओ, वही खतरनाक लोग हैं। जब भी कोई नारा दे कि इकट्ठे हो जाओ तो सावधान हो जाना चाहिए कि यह आदमी झगड़ा पैदा करवाएगा। चाहे वह इकट्ठा होना किसी नाम से हो—वह कहें, इस्लाम मानने वाले इकट्ठे हों। वह कहें भारतीय इकट्ठे हों। जब भी वह कहेगा कि लोग इकट्ठे हों, तब दुश्मन को खड़ा करेगा।

एडोल्फ हिटलर ने अपनी आत्मकथा मग एक बढ़िया बात लिखी है। उसने लिखा है कि अगर किसी को भी इकट्ठा होना हो तो खतरा पैदा करना जरूरी है। और दुश्मन बनाना जरूरी है। बिना दुश्मन बनाए और खतरा पैदा किए कोई इकट्ठा नहीं हो सकता। चाहे सच्चा दुश्मन हो, चाहे झूठा दुश्मन खड़ा करो। चाहे खतरा असली हो, चाहे ऐसी ही हवा पैदा करो कि इस्लाम खतरे में हैं। हिंदू धर्म खतरे में है। कौन खतरे में है? मर जाने दो हिंदू धर्म को, इस्लाम को। किसका क्या बिगड़ता है? इस्लाम के खतरे में होने से खतरा किसको है? किसी को कोई खतरा नहीं है। लेकिन खतरे मग है—यह हवा पैदा करा—डर पैदा करो। डरा हुआ आदम—चार डरे हुए आदमी इकट्ठे हो जाते हैं। क्योंकि वह कहते हैं, अकेले में डर ज्यादा रहेगा। चार इकट्ठे हो जाओ। जब वह चार इकट्ठे होते हैं, उनके पड़ोसी चार देखते हैं कि चार इकट्ठे हो रहे हैं। कोई न कोई गड़बड़ है, खतरा है। हम भी चार इकट्ठे हो जाएं। बस उपद्रव शुरू हो गया। फिर राष्ट्र बनेंगे। जातियां बनेंगी। धर्म बनेंगे। सब तरह की बेवकूफियां पैदा होगी।

दुनिया से संगठन का नारा बंद होना चाहिए। किसी संगठन की कोई जरूरत नहीं है। आदमी अकेला काफी है। संगठन की जरूरत क्या है? संगठित किस लिए—लड़

ना है तो संगठन की जरूरत है। नहीं लड़ना है, तो संगठन की क्या जरूरत है? त
ो जो भी संगठन हैं, वह सब मनुष्यों के दुश्मन है। चाहे उनके नाम कुछ भी हों।
और जो भी संगठन करवाने वाले हैं वह सब मनुष्यता के हत्यारे हैं, चाहे उनके न
मा कुछ भी हों। अब तो ऐसे लोग चाहिए जो सब संगठनों को तोड़ देने के, सब
संगठनों को विकेंद्रित कर देने के, सब संगठनों को डिआर्गनाइज कर देन के, और
एक-एक व्यक्ति को मूल्य देने के पक्ष में हों। संगठन को मूल्य नहीं देना है। एक-ए
क व्यक्ति को मूल्य देना है। आप-आप हैं। मैं-मैं हूं। मुझे और आपको संगठित होने
की क्या जरूरत है? इस दुनिया में संगठन बिलकुल ही अनावश्यक है। संगठन की
क्या आवश्यकता है? हां, इस तरह के संगठन हो सकते हैं—रेलवे हैं, पोस्ट ऑफि
स है, इस तरह के संगठन हो सकते हैं। फंक्शनल, जिनसे कोई जेहाद खड़ा नहीं ह
ोता। कोई झगड़ा खड़ा नहीं होता। पोस्ट आफिस वाले संगठन करके यह नहीं कह
ते कि हम रेलवे वालों से ऊंचे है। हम झगड़ा खड़ा करेंगे। सब रेलवे वालों को पो
स्ट आफिस वाला बनाएंगे। कोई जरूरत नहीं है, रेलवे वाले रेलवे का काम करते
हैं। पोस्ट आफिस वाले पोस्ट आफिस का काम करते हैं। इस तरह आर्गनाइजेशन—
फंक्शनल आर्गनाइजेशन तो दुनिया में हों। लेकिन आइडियालॉजी पर खड़े हुए संगठ
न दुनिया में नहीं चाहिए। चाहे उनका नाम कुछ भी हो। इससे कोई फर्क नहीं पड़
ता। इसलिए किसी संगठन ने मनुष्यता को आगे नहीं बढ़ाया। और कोई संगठन म
नुष्यता को आगे बढ़ा नहीं सकता है।

एक मित्र ने पूछा है कि आप कहते हैं कि अध्यात्मवाद कुछ थोड़े से धनिक लोगों
के लिए है। आप ऐसा क्यों नहीं सोचते कि वह गरीब जनता के लिए भी धर्म-मुकि
त का साधन बन सके?

पहली बात तो यह है कि धर्म गरीब जनता के लिए मुक्ति का साधन न तो कभी
बना है, और न बन सकता है। हां, अफीम जरूर गरीब जनता के लिए बन सक
ता है कि वह अपनी गरीबी में बेहोश रहने के लिए एक तरकीब पा जाए। और
अपनी गरीबी को झेलने के लिए एक तरह की सांत्वना और संतोष उसे मिल सके
। गरीब जनता धर्म के नाम पर बेहोश रखी जा सकती है। और वही आज तक ि
कया गया है। गरीब आदमी की बात नहीं कर रहा हूं—गरीब जनता की। कोई ए
काध गरीब आदमी हो सकता है जो धर्म को अपनी मुक्ति का मार्ग भी बना ले। व
यक्ति हो सकता है। गरीब व्यक्ति धार्मिक हो सकता है। लेकिन यह बड़ी अपवाद
घटना होगी। और अत्यधिक बुद्धिमान होना चाहिए ऐसे व्यक्ति को जो गरीब होक
र धार्मिक हो सके। उसका कारण मैं आपको समझाना चाहूंगा।

मेरी दृष्टि में अमीर आदमी की ही धार्मिक होने की संभावना का द्वार खुलता है।
जरूरी नहीं है, कि अमीर आदमी धार्मिक हो जाए। आवश्यक नहीं है। लेकिन संभा
वना का द्वार खुलता है। और क्यों? क्योंकि मेरी मान्यता है कि शरीर की जरूरतें
जब तक कि पूरी न हो जाए, आत्मा की जरूरतें मांग नहीं करती है। नीची जरू
रतें जब पूरी हो तो ऊंची जरूरतों का चैलेंज शुरू होता है। यह असंभव है कि ए

क भूखे आदमी को सितार सीखने का खयाल आ जाए। आ भी सकता है एकाध आदमी को। और वह इसलिए भी आ सकता है, कि शायद सितार को बजाने में भूख भूल जाए। सितार बजाने में भूख थोड़ी देर भूली भी जा सकती है। लेकिन ि सतार बजाने का खयाल भूख में करीब-करीब असंभव है। पेट भरने का खयाल ही सहज है। जब शरीर की जरूरतें पूरी हो हुई हों तो मन की, आत्मा की और ऊ पर की हायर जरूरतें पैदा ही नहीं होती। गरीब समाज इसीलिए धार्मिक कभी नह ीं हो सकता। गरीब-समाज धर्म की बातें कर सकता है। मंदिर में पूजा-प्रार्थना कर सकता है। यज्ञ, जप, हवन कर सकता है। करता है—खूब करता है। लेकिन उक स कारण धार्मिक नहीं होता है। गरीब आदमी मंदिर भी जाएगी तो रोटी मांगने जाएगा। गरीब आदमी पूजा भी करेगा तो नौकरी मिस जाए, इसके लिए करेगा। गरीब आदमी यज्ञ, हवा, हवन, सत्यनारायण की कथा में भी बैठना है, लेकिन उ सके प्रयोजन हमेशा पेट से बंधे हुए होंगे। उसके प्रयोजन पेट से मुक्त नहीं हो सक ते। उसका धर्म भी किसी न किसी रूप में पेट की मांग पूरी करने की चेष्टा होगी। और धर्म से पेट की कोई मांग पूरी नहीं हो सकती। धर्म से पेट की मांग पूरी हो ती ही नहीं। क्योंकि धर्म से पेट की मांग का कोई संबंध नहीं है। धर्म से चित्त की गहरी मांग पूरी होती है। लेकिन चित्त की मांग करने का तल तो आना चाहिए। उसका तल तब आता है जब सामान्य जीवन की सारी सुविधाएं पूरी हो जाती हैं । और एक व्यक्ति की शरीर के तल पर कोई चिंता नहीं रह जाती। और पहली बार सुविधा मिलती हैं, जिसको हम कहें, लीजर मिलता है, विश्राम मिलता है। उ स विश्राम में ही पहली दफें ऊपर की मांगे शुरू होती हैं। वह आदमी पूछता है, ख ाना-पीना-कपड़ा सब पूरा हुआ—अब क्या? धर्म जो है, वह आदमी की आखिरी ल क्जरी है। गलत है। यह नहीं कह रहा हूं, लेकिन धन से मिली सुविधा की अंतिम इच्छा और कामना है। गलत है, यह भी नहीं कह रहा हूं, लेकिन लक्जरी—वह सुि वधा की है। अंतिम सुविधा मग वह खयाल उठने शुरू होते हैं।

और धनी आदमी को मौका भी है कि वह उसके सामने खोज भी कर सके। गरीब आदमी को मौका भी नहीं है कि वह खोज कर सके। लेकिन धनी आदमी चाहता है कि गरीब आदमी धार्मिक बना रहे। और धनी आदमी गरीब को इसलिए धार्मि क बनाए रखना चाहते हैं कि अगर गरीब आदमी धार्मिक न रहा तो धनी का धन ा रहना बहुत मुश्किल में पड़ जाने वाला है। क्योंकि गरीब आदमी जब तक संतुष्ट है, किन्हीं भी आधारों पर, और जब तक वह अपनी गरीवी को मिटाने की चेष्टा में पूरी। तरह संलग्न नहीं है, तब तक धनी आदमी धन इकट्ठा किए जा सकता है। सारी दुनिया मग में पूंजीवाद को व्यवस्था को सब से बड़ा सहारा तथाकथित ध र्म देता है। और धनी आदमी चाहता है कि गरीब को समझाओ इसलिए धनी आद मी मंदिर भी बनवाता है। बिड़ला कोई ऐसे ही मंदिर नहीं बनवा देता है। सारी दुि नया में बिड़लाओं ने मंदिर बनाए हैं। चर्च खड़े किए हैं। वह अकारण नहीं है। जो हो सकता है, बिड़लाओं को पता भी न हो, कि वह किस लिए मंदिर बना रहे है

? लेकिन बहुत गहरे में—वह जो चेतना है पूंजीवाद की, वह चेतना मंदिर बनाती है, धर्मशालाएं बनाती है, औषधालय खोलती है। वह गरीब को गरीब रहते हुए तृप्त रहने की व्यवस्था के सारे उपाय खोलती है। और वह सारे के सारे उपदेशकों, साधुओं, संन्यासियों को पालती है कि वह गरीब को समझाएं कि संतोष बड़ा धर्म है, सहिष्णुता बड़ी बात है, और तुम गरीब हो—पिछले जन्म के पापों के कारण, अगर अच्छे कर्म करोगे तो आगे तुम भी अमीर हो जाओगे। और वह जो अमीर है, वह पिछले जन्मों के पुण्यों के कारण अमीर है। और गरीब की आंख पर सब तरह की पट्टियां बांधी जाती हैं। अमीर के हित में है, कि गरीब धार्मिक हो। गरीब के हित में बिलकुल नहीं है कि गरीब धार्मिक हो। और गरीब धार्मिक हो ही हनीं सकता। झूठा धार्मिक हो सकता है। इसलिए मेरा कहना यह है, मैं नहीं कहता हूं कि कुछ थोड़े से अमीर लोगों के लिए मैं धर्म को छोड़ता हूं। मेरा मतलब वह है कि अमीरी बांटनी चाहिए, ताकि सब के लिए धर्म हो सके। अमीरी बांटनी पड़ेगी तो समाज धार्मिक होगा। अमीरी बंधी रहेगी कुछ लोगों तो तो देश धार्मिक नहीं होगा। मेरी दृष्टि में समाजवादी व्यवस्था ही धार्मिक समाज को ठीक अर्थों में जन्म दे सकेगी।

और एक मित्र ने पूछा है कि पहले के इतने ऊंचे सिद्धांत हैं, समाज ऊंचा क्यों नहीं होता?

समाज ऊंचा नहीं हो सकता। क्योंकि समाज का पूरा का पूरा ढांचा गलत है। समाज ऊंचा हो सकेगा, समाज का पूरा ढांचा बदलना पड़ेगा। गरीब समाज ईमानदार कैसे हो सकता है। गरीब समाज चोरी से कैसे बच कसता है? गरीब समाज लड़ाई-झगड़ों से कैसे बच सकता है? गरीब समाज का चित्त क्षुद्रताओं से बच ही नहीं सकता। असंभव है बचना। ये सारी क्षुद्रताएं, अनैतिकताएं, यह सारी आचरण हीनता अनिवार्य है। और इसको समझाओ कि तुम आचरण ठीक रखो। चित्त शुद्ध रखो। यह सब नासमझी कि बातें हैं। यह सब होने वाला नहीं है। यह सब पूंजीवाद के लिए शाक आब्जर्वर की व्यवस्था करना है। धक्का न लग जाए पूंजीवाद को। यह ध्यान रखो कि सब तरह के धक्के आएं और पूंजी वाद बच जाए। धर्म, धर्मगुरु, पुरोहित पूंजीवाद को बचाने की हजारों वर्ष से चेष्टा कर रहा है। इसीलिए पुरोहित को पूंजीपति सम्मान देता है। सम्मान देती है। गरीब और अमीर के बीच पुरोहित सबसे बड़ी क्रांति की रुकावट है—दीवार है। साधु और संन्यासी क्रांति के लिए सबसे बड़ी दीवार है। तो मैं कहता हूं—मेरा कहना यह है, कि सारा समाज संपन्न होना चाहिए। संपत्ति सामान्यतया जगह-जगह केंद्रित न होकर विकेंद्रित और फैली हुई होनी चाहिए, और एक-एक आदमी को, प्रत्येक आदमी को इतनी सुविधा होनी चाहिए कि शरीर की छोटी-छोटी, व्यर्थ की अटकाने वाली जरूरतें पूरी हो जाएं। सेक्स, भोजन और मकान यह किसी आदमी को अकारण पीड़ित न करे। इतनी व्यवस्था समाज को जुटा देनी चाहिए। उसके बाद आदमी के धार्मिक होने की यात्रा शुरू हो सकती है। लेकिन इन सब की हम व्यवस्था जुटाने को राजी नहीं है। औ

र अब तो बड़े आश्चर्य की बात है, क्योंकि पहले तो यह असंभव था कि सारे लो
ग संपन्न हो सकें। अब यह बिलकुल संभव है। आज से दो साल पहले यह असंभव
रहा, कि सारे लोग संपन्न हो सकें, इसलिए, दो साल। पहले समाज को जिम्मेदार
ठहराना गलत है। मजबूरी थी। इतनी संपत्ति पैदा ही नहीं हो सकती थी, कि हर
आदमी संपन्न हो सके। लेकिन इन दो सौ वर्षों में टेक्नोलाजी ने हमें वहां ला दिया
है कि अब अगर संपत्ति पैदा नहीं होती, तो कुछ गलत आदतीं और कुछ गलत
स्वार्थ संपत्ति को पैदा होने से रोक रहे है। अन्यथा संपत्ति अब इतनी पैदा हो सक
ती है, कि अब किसी आदमी के गरीब होने की कोई जरूरत नहीं रह गयी है। टेक
नोलाजी का ठीक उपयोग हो तो संपत्ति बरस पड़ेगी और ऋषियों-मुनियों ने स्वर्ग
में जिस सुविधा की कल्पना की थी वह सब पचास वर्षा के भीतर पूरी पृथ्वी पर
एक एक आदमी के लिए हो सकती है। सब स्वर्ग वगैरह जाने की और अप्सराओं
को स्वर्ग में खोजने की—कल्प वृक्ष के नीचे बैठने की, कोई जरूरत नहीं है। वे अप्स
राएं और वे कल्प वृक्ष सब इसी पृथ्वी पर खड़े हो सकते है। टेक्नोलाजी ने उतनी
सुविधा जुटा दी है। लेकिन, समाज का जो ढांचा है—बिलकुल ही गलत है। राष्ट्रों
का जो ढांचा है, वह बिलकुल ही गलत है। राष्ट्र बंटे रहेंगे, तो गरीब राष्ट्र रहेंगे,
अमीर राष्ट्र रहेंगे। और अभी तब तो एक दिक्कत थी, गरीब आदमी था, अमीर
आदमी था। अब एक नई दिक्कत खड़ी हुई है कि गरीब राष्ट्र हैं और अमीर राष
ट्र हैं। अब एक बिलकुल ने तल पर झंझट शुरू हुई है। यह झंझट कभी न थी। आ
ज अमरीका तो एक अमीर राष्ट्र हो गया, और हम एक क्षुद्र गरीब राष्ट्र हैं। तब
भीख मांगने के सिवाय कोई हैसियत नहीं है। अगर अब राष्ट्र नहीं मिटते तो अमर
ीका में जो संभावना हो गयी है, वह हमको अभी उपलब्ध नहीं हो सकती। यदि रा
ष्ट्र मिट जाए तो वह सारी संभावना हमको उपलब्ध हो सकती है जो उनको उपल
ब्ध हो गयी है। राष्ट्र मिटने चाहिए।

लेकिन राष्ट्र कैसे मिटेंगे? अगर वहां ही नहीं मिटते तो राष्ट्र कैसे मिटेंगे? वर्ग मि
टने चाहिए, जाति मिटनी चाहिए, सीमाएं मिटनी चाहिए, और हमें अब कुछ इस
भाषा में सोचना चाहिए, कि हम सब मिलकर ज्यादा से ज्यादा आनंदित कैसे हो
सकते है। कल तक हमने ऐसा ही सोचा था कि मैं कैसे सुखी हो सकता हूं। सुविध
ा भी न थी सबके सुखी होने की। एक सुखी हो सकता था। दस के दुख पर। दस
दुखी होते तो ही एक सुखी हो सकता था। अब वह बात खत्म हो गयी। अब ग्यार
ह ही सुखी हो सकते हैं। अब किसी एक को दस के दुख पर सुखी होने की जरूरत
नहीं रही। और सच तो यह है कि अगर दस दुखी हों और एक सुखी हो तो एक
सिर्फ भ्रम में होता है। सुखी वही हो नहीं पाता है। क्योंकि दस को दुखी करने में
जिस प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है उस प्रक्रिया में वह इतना चिंतित, पीड़ित और
परेशान हो जाता है, जिसका हिसाब नहीं। यह जो निरंतर कहा जाता है कि धन
से कोई सुख नहीं मिलता, उसका और कोई कारण नहीं है। धन से बहुत सुख मि
ल सकता है। धन से सुख नहीं मिलता है क्योंकि धन चारों तरफ गरीबी पैदा कर

देता है। आज तक धन से सुख नहीं मिला। लेकिन रूस में धन से सुख मिल रहा है। रूस में यह बात कहनी गलत होगी कि धन से कोई सुख नहीं मिलता। यह ब ात ही बेवकूफी की है कि धन से सुख नहीं मिलता है। धन तो साधन है। बहुत सु ख ला सकता है। लेकिन आज तक लाया नहीं। महावीर और बुद्ध ने जो कुछ कह ा है कि धन से कोई सुख नहीं मिलता, यह बात अब बिलकुल गलत है। महावीर के समय मग ठीक थी। क्योंकि महावीर ने जो धन इकट्ठा किया, उनके बाप-दादों ने, वह सारा का सारा धन चारों तरफ इतनी गरीबी पैदा कर गया, कि महावीर जैसे बुद्धिमान आदमी को लगा कि धन से सुख मिल सकता है? यह तो पुण्य है, इससे सुख नहीं मिल सकता है—इसको छोड़ दो। लेकिन महावीर को भी समझ में नहीं आया कि तुम्हारे छोड़ने से कोई फर्क नहीं पड़ता, तुम्हारा चचेरा भाई उसका मालिक हो जाता है। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। बुद्ध धन को छोड़ देते हैं, तो बुद्ध का कोई रिश्तेदार धन का मालिक हो जाता है। यह खयाल में नहीं आ सका । बुद्ध और महावीर को धन से सुख न मिलने का कारण यह है, कि धन को इक ट्ठा करने की प्रक्रिया में इतने लोग गरीब हो जाते हैं, समाज इतना विपन्न हो जा ता है। इतने दुख की लहरें फैल जाती हैं कि एक आदमी कैसे सुखी हो सकता है। समझ लीजिए कि अहमदाबाद में अगर मेरे स्वस्थ होने की यह कंडीशन हो कि पू रा अहमदाबाद बीमार हो जाए, तब मैं स्वस्थ हो सकता हूं, और यह शर्त हो। औ र मेरे स्वस्थ होने में सारे अहमदाबाद को बीमार हो जाना पड़े, तो क्या मैं उस ब ीमार अहमदाबाद में स्वस्थ रह सकूंगा? यह असंभव हो जाएगा। और अगर मैंने इं तजाम भी कर लिया, बड़ी दीवार उठा लीं, पहरे लगा लिए, बड़ी बंदूकें लगवा दीं , बड़े डाक्टरों की कतार लगा दी और उनके भीतर छिप कर मैं स्वस्थ रहने लगा , तो उस स्वस्थ की सुरक्षा में जो इंतजाम करना पड़ेगा, वह बीमारी भोगने से ज्य ादा कष्टपूर्ण हो जाने वाला हो जाएगा। और वह हो जाएगा। और वह हो गया है। धन से कोई सुख नहीं मिला किसी को। धन की अब तक इकट्ठी होने की प्रक्रिया गलत थी। बिना किसी को गरीब बनो धन इकट्ठा नहीं होता है। आने वाली दुनि या में हमें यह फिकर करनी चाहिए। धन पैदा हो। लेकिन इकट्ठा न हो। धन बंटे। और धन तक फैले। हम इस भाषा में सोचें कि कोई अमीर गरीब न हो पाए, सब संपन्न हो पाएं।